संस्थापित १८६७ ई.

ओ३म्

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● संयुक्तांक : १६ एवं २० ● ११ एवं १८ मई, २०२३ (गुरुवार) ज्येष्ठ कृष्णपक्ष चतुर्दशी सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२४

नशा मुक्तप्रदेश की लड़ाई में युवाओं को आगे आना होगा

वैचारिक प्रदूषण का निराकरण आर्य समाज के पास

–देवेंद्रपाल वर्मा

आर्य महासम्मेलन एवं विराट कवि सम्मेलन सम्पन्न

महर्षि दयानंद सरस्वती की २००वीं जयंती के पावन अवसर पर आर्य समाज ऊंचा गांव जनपद हाथरस के तीन दिवसीय शताब्दी समारोह के आर्य महासम्मेलन में दिनांक १५ मई २०२३ को आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के ओजस्वी प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा जी ने मुख्य अतिथि के रूप में विशाल आर्य समूह को संबोधित करते हुए कहा कि 'आज देश की स्थिति बड़ी विकट होती जा रही है। समाज में वैचारिक प्रदूषण जो राजनीतिक दलों द्वारा फैलाया जा रहा है उसका निराकरण केवल आर्य समाज ही कर सकता है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद ने वेद को सारे ज्ञान का मूल कहा था, तभी आर्य समाज के नियमों में वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है" कहा था। वेदों से विमुख होने के कारण ही हम सैकड़ों वर्ष गुलाम रहे। आर्य समाज में उच्च वर्ग में पाखंड तेजी से फैल रहा है, तो साधारण लोगों की बात ही क्या? संस्कार विहीन युवा कर मैदान में उतरना होगा, तभी देश बचेगा। प्रदेश में तेजी से फैल रही नशे की लत के कारण सैकड़ों परिवार बरबाद हो रहे हैं, खास कर इनका असर महिलाओं और बच्चों पर ज्यादा पड़ता है। नशा मुक्त प्रदेश की लड़ाई में युवाओं को आगे आना होगा। तभी इसपर लगाम लग सकेगी।

गुरुकुलीय शिक्षा के माध्यम से युवा वर्ग उच्च गुणों को धारण कर देश समाज व परिवार की उन्नति में है। आओ महर्षि की २००वीं जयंती पर वेद प्रचार का तुमुल घोषित कर जन-जन तक इसे पहुंचाए।

सम्मेलन को आचार्य चंद्र देव शास्त्री ने भी संबोधित किया उन्होंने कहा कि वैदिक शिक्षा पद्धति व गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से ही युवा शक्ति को भटके पथ से वापस लाया जा सकता है।

समारोह को स्वामी शिवानंद जी श्री धनीराम बेधड़क, श्री नरदेव बेनीवाल, श्री मुकेश शास्त्री, सुश्री धर्म रक्षिता आर्या आदि ने भी प्रवचनों व भजनों के माध्यम से लोगों को प्रेरित किया।

दिनांक १६ मई की रात्रि राष्ट्र रक्षा विषय पर विराट कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें श्री लटूरी लट्ठ टुण्डला श्री सूरजपाल बेनीपाल, मथुरा, श्री सुनहरी लाल तुख्त दिल्ली, श्री कर्मवीर फरीदाबाद, श्री धर्मेश अविचल अलीगढ, श्रीमती रेनू, उपाध्याय, मथुरा, श्री देशराज, हरियाणा आदि कवि व व्यंगकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उपस्थित जन समूह का मन मोह लिया।

कार्यक्रम की सफलता में सर्वश्री राजन सिंह, यशपाल सिंह, सुन्दर पाल, राजवीर सिंह, रणवीर सिंह, (गल्ला प्रधान) लखनपाल सिंह, जगवीर सिंह आर्य इन्द्रजीत सिंह आर्य आदि का योगदान सराहनीय रहा।

वेदामृतम्

पवस्व सोम देववीतये वृषा, इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमाविश ।
पुरा नो बाधाद् दुरिताति पारय, क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते।।

ऋ. ६.७०.६

हे रसागार सोम परमात्मन् ! तुम 'वृषा' हो, रस की वर्षा करनेवाले हो । तुम दिव्य गुणों के रस के साथ मेरे अन्दर प्रवाहित होवो। तुम आत्मा के हृदय-रूप सोम-कलश में आकर प्रविष्ट होवो, मेरा आत्मा न जाने कब से सोम-पान के लिए उत्कंठित हो रहा है, उस प्यासे की तृषा को दूर करो। तुम कामवर्षी हो, मेरी कामना को पूर्ण करो। तुम आनन्दवर्षी हो, मुझपर आनन्द की वर्षा करो।

कभी-कभी मेरा आत्मा 'दुरितों' से घिर जाता है। पाप-भावनाएँ उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। पाप-कर्म उसे निगलने के लिए तैयार रहते हैं। आसपास का पापमय वातावरण उसे पाप मार्ग पर चलने के लिए प्रलोभित करता है। ऐसे समय में हे मेरे सोम प्रभु ! क्या तुम खड़े देखते ही रहोगे ? क्या तुम मुझे 'दुरितों' से ग्रसा जाने दोगे ? क्या तुम मुझे पाप-ताप के प्रहारों से छलनी हो जाने दोगे ? क्या तुम मुझे दुराचार-रूप शत्रुओं से आक्रान्त हो जाने दोगे ? नहीं, तुम मेरे उद्धारक होकर आओ। इससे पहले कि 'दुरित' मेरे आत्मा पर प्रभुत्व पायें, उसे पतनोन्मुख करें, तुम त्वरित गति से मेरे पास आ जाओ और मुझे उन दुरितों से लंधाकर पार कर दो। संसार का यह नियम है कि जो 'क्षेत्रवित्' है, मार्ग का ज्ञाता है, वह पूछनेवाले को दिशा बताता ही है। तुमसे बढ़कर 'क्षेत्र वित्', बढ़कर मार्गज्ञ अन्य कौन है ! अतः हे मेरे सोम प्रभु ! मैं तो तुम्हीं से दिशा पूछता हूँ। मैं दिग्भ्रान्त हो रहा हूँ, तुम कुतुबनुमा यन्त्र की सुई बनकर मुझे दिशा दर्शाओ। यदि तुमसे दिशा-ज्ञान न मिला, तो मेरा जीवन-पोत भव- सागर में डूबकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। हे प्रभु ! मुझ भूले को सही राह दिखाओ, मुझ भटके को गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँचाओ।

साभार-वेदमंजरी

महर्षि दयानन्द सरस्वती के उपकार

– अनुज आर्य

१.) चाहते तो किसी भी बड़े मन्दिर के मठाधीश बनकर अन्य पंडितो की तरह आराम से बैठे बैठे खाते पीते मौज उड़ाते लेकिन ऐसा न करके अपना पूरा जीवन समाज और सनातन धर्म के लिए दान कर दिया। एकलव्य ने सिर्फ अंगूठा दिया था गुरुदक्षिणा में लेकिन दयानंद ने तो पूरा जीवन दे दिया गुरु दक्षिणा में ।

२.) जिन वेदों को सनातन धर्म की रीढ़ समझा जाता था

उनका लोप हो चुका था लोग वेद शब्द तक को भूल गये थे लेकिन दयानंद ने फिर से वेदों को मानो एक नया जीवन दे दिया था । लोग वेदों को पुनः जानने लगे उन्हें मानने लगे ।

३.) सनातन धर्म में भिन्न भिन्न प्रकार के आडम्बर , पाखंड फैल चुके थे यज्ञ के नाम पर बली चढाई जाती थी दयानंद ने उन सब पाखण्ड का विरोध करके उनके खिलाफ अभियान चलाया ताकि समाज सर राष्ट्र इस अन्धकार से निकल कर प्रकाश की तरफ जा सके ।

४.) दयानंद के समय में स्त्री और शुद्र शिक्षा का विरोध किया जाता था लेकिन दयानंद ने स्त्री और शूद्रों की शिक्षा का समर्थन करके उन्हें शिक्षित करके समाज में सम्मान दिलाया ।

५.) भारत भूमि से जिस वैदिक गुरुकुलीय शिक्षा का खात्मा हो चुका था उसका पुनरुत्थान किया ।

क्रमशः पृ. ८.....

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

स्वार्थ की सीमा

''यह संसार है। यहां पर सच्चे झूठे आरोप तो चलते ही रहते हैं। झूठे आरोपों से तो यहां ईश्वर भी नहीं बच पाता, आप और हम तो क्या बच पाएंगे!''

संसार में सब प्रकार के लोग हैं। कुछ अच्छे हैं। कुछ बुरे हैं। कुछ लोग सत्यवादी हैं। कुछ मिथ्यावादी हैं। कुछ परोपकारी हैं। कुछ स्वार्थी हैं। इस प्रकार से सब लोग अपने-अपने विचार संस्कार बुद्धि आदि के अनुसार अपना अपना जीवन जीते हैं।

''यहां संसार में जो लोग रहते हैं। उनमें सामान्य रूप से तो स्वार्थी सभी हैं। परंतु उनमें भी तीन स्तर हैं। एक - उत्तम स्वार्थी। दूसरे - मध्यम स्वार्थी। और तीसरे - घटिया स्वार्थी।''

'उत्तम स्वार्थी' - वे लोग कहलाते हैं, जो मोक्ष प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर अपना जीवन जीते हैं। वेद आदि शास्त्रों में बताया है, कि ''मोक्ष प्राप्ति को लक्ष्य बनाओ। समाज की सेवा करो। परोपकार करो। अच्छे काम करो। बुरे काम मत करो। अच्छे काम करते हुए भी जो कष्ट आएंगे, उनको प्रसन्नतापूर्वक सहन करो। स्वयं कष्ट उठा कर भी दूसरों को सुख दो। जैसा कि महर्षि दयानंद सरस्वती जी आदि महापुरुषों ने किया।'' इस प्रकार की जीवन शैली वाले लोग 'उत्तम स्वार्थी' कहलाते हैं। इन्हें मोक्ष फल मिलेगा।

दूसरे 'मध्यम स्वार्थी' हैं। उनके लिए वेद आदि शास्त्रों में ऐसा विधान है कि ''सच्चाई, ईमानदारी, बुद्धिमत्ता से न्याय पूर्वक अपना जीवन जीओ। दूसरों को सुख दो। स्वयं भी सुखी रहो। दूसरों की हानि मत करो। यदि दूसरों के लिए आप कष्ट नहीं उठा सकते, तो न सही, कम से कम दूसरों पर अन्याय तो मत करो। दूसरों को दुख मत दो।'' ऐसी जीवन शैली वाले लोग 'मध्यम स्वार्थी' कहलाते हैं।

और तीसरे तो बिल्कुल 'घटिया स्वार्थी' हैं। वे लोग कैसे होते हैं? ''ऐसे लोग केवल अपना ही स्वार्थ देखते हैं।'' उनका चिंतन ऐसा होता है, कि ''बस मुझे लाभ होना चाहिए। दूसरा व्यक्ति जाए भाड़ में। दूसरा गिरे खड्डे में। दूसरा जाए नरक में। मुझे उससे क्या? वे लोग दूसरे व्यक्ति को लूटकर खा जाते हैं। उसकी संपत्ति छीन लेते हैं। उस पर झूठे आरोप लगाते हैं। उसे व्यर्थ बदनाम करते हैं।'' ऐसी बेकार जीवन शैली वाले लोग 'घटिया स्वार्थी' कहलाते हैं।

वेदों का संदेश है कि ''मनुष्य को सबसे पहले उत्तम स्वार्थी बनने का प्रयास करना चाहिए। यदि इतनी योग्यता न हो, तो कोई बात नहीं। तब मध्यम स्वार्थी बने, तो भी ठीक है। परंतु घटिया स्वार्थी तो कभी नहीं बनना चाहिए। दूसरों पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें व्यर्थ बदनाम नहीं करना चाहिए। दूसरों पर अन्याय और अत्याचार तो नहीं करना चाहिए।''

परंतु प्रत्येक आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है। अपने अपने संस्कारों विचारों और भावनाओं के अनुसार कोई उत्तम स्वार्थी बनकर जीता है, तो कोई मध्यम स्वार्थी के स्तर पर जीता है। अधिकांश लोग तो घटिया स्वार्थी वाले स्तर पर ही जीते हैं।

अब क्योंकि आप भी उन्हीं लोगों के साथ इसी संसार में रह रहे हैं। इसलिए उनके आक्रमण से आप भी बच नहीं पाएंगे। ''आपके चारों तरफ घटिया स्वार्थी लोग रहते हैं। वे आप को बदनाम करेंगे, आपके साथ अन्याय करेंगे, आप पर झूठे आरोप लगाएंगे।'' ऐसी स्थिति में, यदि आप शान्ति से अपना जीवन जीना चाहते हैं, तो ''आपको उनसे अपना बचाव करना है, उनके साथ झगड़ा नहीं करना।''

उनसे बचाव करने का तरीका यह है, कि ''आप स्वयं गलती करें नहीं। और दूसरा व्यक्ति आप पर कोई झूठा आरोप लगाए, तो उसकी चिंता न करें। जब तक आप उनके झूठे आरोपों को हृदयध्मन से स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक उनके झूठे आरोपों का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। जब आप उनके आरोपों को स्वीकार कर लेंगे, कि ''यह व्यक्ति मुझे ऐसा क्यों कहता है।'' तब आप दुखी होंगे।'' तो दुख चिंता तनाव आदि से बचने का उपाय यही है, कि उनके झूठे आरोपों को आप स्वीकार ही न करें। अपने कार्य में मस्त रहें, प्रसन्न रहें। यही संसार में ठीक ढंग से जीने की कला है।'' यदि आप इतना कर लेंगे, तो आप दूसरों के झूठे आरोपों से परेशान नहीं होंगे।

''यहां तो संसार में तो इतने घटिया लोग हैं, जो ईश्वर को भी नहीं छोड़ते। ईश्वर में एक भी दोष नहीं है। फिर भी उस पर झूठे आरोप लगाते हैं। खूब झूठे आरोप लगाते हैं। हर रोज लगाते हैं। जब सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ सर्वथा निर्दोष ईश्वर को लोग नहीं छोड़ते, तो आपको और मुझे कौन छोड़ेगा? हम तो क्या चीज हैं? कुछ भी नहीं। ईश्वर के सामने 'न' के बराबर।''

''इसलिए हमेशा अच्छे काम करें। घटिया स्वार्थी लोगों से अपना बचाव करें, और सदा प्रसन्न रहें।''

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

मत्ती रचित इज्जील

६५-उसने उनसे कहा मेरे पीछे आओ मैं तुमको मनुष्यों के मछुवे बनाऊंगा।। वे तुरन्त जालों को छोड़ के उसके पीछे हो लिये। -इं० मत्ती प० ४। आ० १९ २०।।

(समीक्षक) विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो तौरेत में दश आज्ञाओं में लिखा है कि 'सन्तान लोग अपने माता पिता की सेवा और मान्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े' सो ईसा ने न अपने माता पिता की सेवा की और दूसरों को भी माता पिता की सेवा से छुड़ाये, इसी अपराध से चिरंजीवी न रहा। और यह भी विदित हुआ कि ईसा ने मनुष्यों के फंसाने के लिये एक मत चलाया है कि जाल में मच्छी के समान मनुष्यों को स्वमत जाल में फंसाकर अपना प्रयोजन साधें। जब ईसा ही ऐसा था तो आज कल के पादरी लोग अपने जाल में मनुष्यों को फंसावें तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि जैसे बड़ी-बड़ी और बहुत मच्छियों को जाल में फंसाने वाले की प्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है, ऐसे ही जो बहुतों को अपने मत में फंसा ले उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसी से ये लोग जिन्होंने वेद और शास्त्रों को न पढ़ा न सुना उन बिचारे भोले मनुष्यों को अपने जाल में फंसा के उस के मां बाप कुटुम्ब आदि से पृथक् कर देते हैं।

इससे सब विद्वान् आर्यों को उचित है कि स्वयम् इनके भ्रमजाल से बच कर अन्य अपने भोले भाइयों को बचाने में तत्पर रहें।। ६५।।

६६- तब यीशु सारे गालील देश में उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक रोग और हर एक व्याधि को चङ्गा करता हुआ फिरा किया।। सब रोगियों को जो नाना प्रकार के रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूतग्रस्तों और मृगी वाले अर्द्धाङ्गियों को उसके पास लाये और उसने उन्हें चङ्गा किया।। -इं० मत्ती प० ४। आ० २३ २४।।

(समीक्षक) जैसे आजकल पोपलीला निकालने मन्त्र पुरश्चरण आशीर्वाद ताबीज और भस्म की चुटकी देने से भूतों को निकालना रोगों को छुड़ाना सच्चा हो तो वह इंजील की बात भी सच्ची होवे। इस कारण भोले मनुष्यों के भ्रम में फंसाने के लिये ये बातें हैं। जो ईसाई लोग ईसा की बातों को मानते हैं तो यहां के देवी भोपों की बातें क्यों नहीं मानते? क्योंकि वे बातें इन्हीं के सदृश हैं। ६६।

६७-धन्य वे जो मन में दीन हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। क्योंकि मैं तुमसे सच कहता हूँ कि जब लो आकाश और पृथिवी टल न जायें तब लों व्यवस्था से एक मात्रा अथवा एक बिन्दु बिना पूरा हुए नहीं टलेगा। इसलिये इन अति छोटी आज्ञाओं में से एक को लोप करे और लोगों को वैसे ही सिखावे वह स्वर्ग के राज्य में सब से छोटा कहावेगा। -इं० मत्ती प० ५। आ० ३। १८ १९।।

(समीक्षक) जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिये। इसलिये जितने दीन हैं वे सब स्वर्ग को जावेंगे तो स्वर्ग में राज्य का अधिकार किसको होगा। अर्थात् परस्पर लड़ाई-भिड़ाई करेंगे और राज्यव्यवस्था खण्ड-बण्ड हो जायेगी। और दीन के कहने से जो कंगले लोगे, तब तो ठीक नहीं। जो निरभिमानी लोगे तो भी ठीक नहींय क्योंकि दीन और निर-ंअभिमान का एकार्थ नहीं। किन्तु जो मन में दीन होता है उसको सन्तोष कभी नहीं होता इसलिये यह बात ठीक नहीं। जब आकाश पृथिवी टल जायें तब व्यवस्था भी टल जायेगी ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्यों की होती है, सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं। और यह एक प्रलोभन और भयमात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्ग में सब से छोटा गिना जायेगा।।६७।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

अनेक विषय

राधा स्वामी मत

(राधास्वामी मत के साधुओं से प्रागरा में प्रश्नोत्तर-नवम्बर, १८८०)

स्वामी जी के आगरा निवास के समय एक दिन राधास्वामी मत के ५-७ पंजाबी साधु आये, जिनमें स्त्रियां और पुरुष दोनों सम्मिलित थे। और प्रश्न किया कि कोई गुरु के उपदेश और सहयता के बिना संसार-सागर से पार नहीं हो सकता ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि गुरु की शिक्षा तो आवश्यक है परन्तु जब तक कोई चेला अपना आचार ठीक न करे कुछ नहीं हो सकता ।

उन्होंने प्रश्न किया कि ईश्वर के दर्शन कैसे हो सकते हैं ?

स्वामी जी ने कहा कि जैसे तुम मूर्खता से ईश्वर के दर्शन करना चाहते हो नहीं हो सकते। एक प्रश्न उनका यह था कि ईश्वर तो भक्त के वश में है ।

स्वामी जी ने कहा कि भक्ति तो ईश्वर की आवश्यक है परन्तु पहले यह समझ लो कि भक्ति चीज क्या है। विना किसी पुरुषार्थ के किये कोई वस्तु स्वयमेव प्राप्त नहीं हो सकती और जिस प्रकार से तुम भक्ति करना चाहते हो ऐसे बहुत से पथ लोगों के बिगाड़ने के लिये हुए। इन से इस लोक या परलोक का कोई लाभ नहीं हो सकता ।

मूर्तिपूजा पर भी बात चली। उन्होंने कहा कि हम और हिन्दुओं से अच्छे हैं ।

स्वामी जी ने कहा- नहीं, वह रामचन्द्र और कृष्णादि उत्तम पुरुषों को देवता और अवतार मानते हैं, तुम गुरु को परमेश्वर से बढ़कर मानते हो ।इसलिये तुम उनसे किसी प्रकार अच्छे नहीं, प्रत्युत बुरे हो ।

उन्होंने कहा कि वेद के पढ़ने में बहुत समय नष्ट होता है परन्तु उससे कुछ भक्ति प्राप्त नहीं होती ।

स्वामी जी ने कहा कि जो पुरुषार्थ कुछ नहीं करता और भिक्षा माँगकर पेट पालना चाहता है उसे वेद का पढ़ना बहुत कठिन है।

ये लोग कुछ भी विद्वान् नहीं थे।

(लेखराम पृष्ठ ५२५-५२६)

अद्वैत ब्रह्म

(मेरी उपनिषद्-भाष्य शैली)

–आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख
एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म
तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु
नात्येति कश्चन, एतद्वै तत्।।

कठोपनिषद् ६.१,

(ऊर्ध्वमूलः) जिसका मूल ऊर्ध्व है, इसका अर्थ प्रायः यह किया गया है कि जिसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं, यह उचित नहीं है, हमें आर्ष ग्रन्थों को आर्ष दृष्टि से ही देखना चाहिए । यहाँ 'ऊर्ध्वः' पद पर महर्षि यास्क का निर्वचन उद्धृत करते हैं- 'ऊर्ध्वमुद्धृतं भवति' अर्थात् जो उत्कृष्टता से धारण किया हुआ होता है। निरुक्त के किसी अन्य संस्करण में यह पाठ इस प्रकार है, 'ऊर्ध्वमुच्छ्रितो भवति' अर्थात् जो उत्कृष्टतापूर्वक आश्रित होता है। इसका अर्थ यह है कि जिसका मूल कारण पदार्थ किसी अन्य के द्वारा उत्कृष्टतापूर्वक धारण वा आश्रित हुआ होता है। अब 'मूलम्' पद के निर्वाचन पर विचार करते हैं- 'मूलं मोचनाद्वा मोषणाद्वा मोहनाद्वा' (निरुक्त ६. ३) अर्थात् जो अपने आधार से छुड़ाई जा सकती है, जो छिपी रहती है तथा जो भ्रमित कर सकती है कि उसका विस्तार कहाँ तक है ? जैसे वृक्ष की जड़ को धरती से उखाड़ा जा सकता है, वह भूमि में छिपी भी रहती है और वृक्ष के सभी गुणों को अपने में छिपाये भी रखती है तथा वृक्ष की जड़ें कहाँ तक फैली हैं, इसका ज्ञान भी सहज नहीं होता, इस कारण जड़ को मूल कहते हैं। जड़ ही वृक्ष का आधार भी होती है और उसे सतत पोषण भी प्रदान करती रहती है ।

इस प्रकार इस जगत् को ऊर्ध्वमूल कहने का तात्पर्य है कि इसका मूल कारण प्रकृतिरूप पदार्थ ब्रह्म द्वारा उत्कृष्टता से धारण किया हुआ उसी में आश्रित भी होता है। यहाँ आगामी 'एषः ' पद से जगत् का ग्रहण किया गया है, क्योंकि जगत् प्रत्यक्ष होता है । सम्पूर्ण जगत् की जड़ अथवा बीज यह प्रकृति पदार्थ ही है, जो प्रलय काल में ब्रह्म से क्रियाशीलता की दृष्टि से पृथक् हो जाता है अर्थात् जब ब्रह्म से साक्षात् उत्पन्न 'ओ३म्' रश्मियाँ अपना सम्पर्क अन्य रश्मि आदि पदार्थों से तोड़ देती हैं, तब जगत् की प्रलय उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार वृक्ष को जड़ से उखाड़कर धरती पृथक् करने पर वह सूख जाता है। वह प्रकृति पदार्थ अपने अन्दर सत्व, रजस् व तमस् तीनों गुणों को छिपाये रखता है, जिनसे कालान्तर में सम्पूर्ण जगत् के नाना प्रकार के गुणों की उत्पत्ति होती है। यह प्रकृति पदार्थ सृष्टि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व विशालतम पदार्थों में ऐसा व्याप्त रहता है कि उसके विस्तार का किसी को पूर्ण बोध नहीं हो सकता। उल्लेखनीय है कि सृष्टि बनने में सम्पूर्ण मूल पदार्थ का उपयोग नहीं होता है, बल्कि वह पदार्थ प्रत्येक पदार्थ के साथ सदैव संश्लिष्ट रहकर उसे आधार प्रदान करता रहता है। इसके साथ ही सृष्टि की प्रत्येक क्रिया में आवश्यकता के अनुसार उपादान तत्त्व की पूर्ति भी करता रहता है । जिस प्रकार जड़ें भूमि से जल व खनिज लेकर वृक्ष का पोषण करती है, उसी प्रकार प्रकृति में उत्पन्न परा 'ओ३म्'' रश्मियाँ सम्पूर्ण सृष्टि के निर्माण व संचालन में सतत अनिवार्य भूमिका निभाती हैं।

इन सब कारणों से ही जगत् को ऊर्ध्वमूल कहा है और वह मूल प्रकृति रूप पदार्थ । जब इससे एक चरण और आगे बढ़ें, तो प्रकृति का भी आधार ब्रह्म है, जिसकी चर्चा आगे की गयी है । ध्यातव्य है कि ब्रह्म प्रकृति का उपादान कारण नहीं है, वह केवल नियन्ता है ।

(अवाक्शाखः) यह जगत् अवाक् शाखाओं वाला है। जिसका अर्थ प्रायः यही किया गया है कि जगत् नीचे गयी हुई शाखाओं वाला है। गीता १५.१ में 'अवाक्' के स्थान पर 'अधः' का प्रयोग है। यहाँ 'अवाक्' पद में 'अव' उपसर्ग एवं 'अ्ंचु गतौ याचने अव्यक्ते शब्दे च' धातु का प्रयोग है। 'अव' उपसर्ग को महर्षि यास्क ने निरुक्त १.३ में विनिग्रह अर्थात् पकड़ने अर्थ में प्रयुक्त होना माना है। इस प्रकार 'अवाक्शाखः ' पद का अर्थ है- जगत् की सभी शाखाएँ (सूक्ष्म कणों, रश्मियों से लेकर विशाल लोक-लोकान्तर तक जो आकाश में सोयी हुई वा विद्यमान हैं), उसी मूल प्रकृति पदार्थ वा ब्रह्म से साक्षात् उत्पन्न 'ओ३म्' रश्मियों के द्वारा संश्लिष्ट वा नियन्त्रित होकर ही सभी प्रकार की क्रियाएँ कर रही हैं। इसका अर्थ यह है कि सृष्टि का प्रत्येक सूक्ष्मतम से लेकर स्थूलतम पदार्थ प्रकृति पदार्थ के साथ संश्लिष्ट व ब्रह्म द्वारा नियन्त्रित है। सृष्टि के सभी पदार्थ नियन्त्रित बल और गति के साथ ही क्रियाशील रहते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक पदार्थ से सूक्ष्म ध्वनियाँ भी उत्पन्न होती रहती हैं। उल्लेखनीय है कि ब्रह्म सभी जड़ पदार्थों को 'ओ३म् रश्मियों के द्वारा ही विज्ञानपूर्वक गति व बल सतत प्रदान करता है। 'ओ३म्' रश्मियाँ अपने से स्थूल रश्मियों और वे रश्मियाँ अग्रिम चरण के सूक्ष्म पदार्थों को नियन्त्रित गति, दिशा व बल ब्रह्म के प्रयोजनानुसार प्रदान करती हैं। यदि 'अधः' पद पर भी विचार करें, तो इसका अर्थ 'न धावति' भी होता है। (देखे - निरुक्त २. ११) तब भी 'अधः शाखः' का अर्थ यही होगा कि जगत् में सभी पदार्थ अनियन्त्रित होकर भाग नहीं सकते हैं, बल्कि उन नियमों में ही बंधे हुए रहते हैं । यदि कोई अधः '' का अर्थ निम्न ही माने, तब भी कोई बात नहीं है । सम्पूर्ण जगत् के सूक्ष्म से स्थूल तक सभी पदार्थ प्रकृति रूप पदार्थ से इसलिए निम्न हैं, क्योंकि वे प्रकृति पदार्थ के समान सबसे उत्कृष्ट व श्रेष्ठ पदार्थ परमात्मा के साक्षात् निकट नहीं होते हैं। उनकी ब्रह्म से जो भी निकटता होती है वह प्रकृति पदार्थ के माध्यम से ही होती है। इसलिए प्रकृति से बनी सृष्टि के पदार्थ का स्थान प्रकृति पदार्थ से नीचे ही माना जाना चाहिए। ध्यान रहे 'शाखा' पद अर्थ है- जो आकाश में सोयी वा फैली हुई रहती है । इसके लिए निरुक्त १.४ देखना चाहिए । इसी के अनुसार वृक्ष की शाखा को शाखा इस कारण भी कहते हैं कि वे ही वृक्ष को सम्पूर्ण रूप देने में समर्थ होती हैं । इसी प्रकार ब्रह्माण्ड के सभी कण व लोक आदि सभी पदार्थ शाखा इस कारण कहाते हैं कि ये ही जगत् को जगत् का स्वरूप वा आकार प्रदान करते हैं ।

(एषः, अश्वत्थः) ऐसा यह प्रत्यक्ष जगत् अश्वत्थ रूप है। यहाँ 'अश्वत्थः' पद के दो अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं- प्रथम प्रसिद्ध अर्थ है - अ. श्वत्थः अर्थात् जो कल स्थिर न रहे अर्थात् क्षणभंगुर । इसका अर्थ यह है कि जो भी सृष्टि है, वह अनित्य है, न कि अनादि व अविनाशी। इसका दूसरा अर्थ है- अश्व में स्थित । यहाँ 'अश्वः' पद के विषय में ऋषियों के कुछ कथन उद्धृत करते हैं-

यजमानो वा अश्वः (तै ब्रा.३. ९.१७.५),
इन्द्रो वा अश्वः (कौ. ब्रा. १५. ४)

अर्थात् यह जगत् बलवत्तम इन्द्ररूप ब्रह्म, जो सम्पूर्ण सृष्टि का यजमान है अर्थात् वही सभी प्रकार की सृजन, संयोजन आदि क्रियाओं का मूलकर्तृता है, में स्थित है। ध्यातव्य है कि महर्षि यास्क ने इन्द्र को सभी बलों का कारण माना है और महर्षि याज्ञवल्क्य भी कहते है - इन्द्रो बलं बलपतिः (श.११.४.३.१२)। इस कारण ब्रह्म का एक नाम इन्द्र भी है और इन्द्र होने के कारण ही वह सृष्टि का यजमान है, इसी कारण कहा है- इन्द्रो वै यजमानः (श.२.१.२.११) । स्मरण रहे महाप्रलयकाल में परमात्मा यजमान नहीं रहता, जिससे प्रकृति के तीनों गुण शान्त अर्थात् साम्य वा प्रसुप्त रहते हैं। जैसे ही परमात्मा का यजमानत्व सक्रिय होता है, वैसे ही वह इन्द्र बनकर जगत् को बनाकर स्वयं में ही उसे धारण कर लेता है। इस कारण भी जगत् को अश्वत्थ कहा है । ध्यान रहे कि प्रलयकाल में परमात्मा भले ही यजमान रूप में कार्य नहीं करता, वह प्रकृति पदार्थ की भाँति प्रसुप्त भी नहीं रहता, बल्कि सतत जाग्रत रहता है। वर्तमान भौतिकी की दृष्टि से सभी पदार्थ नाना प्रकार के बलों में ही अर्थात् उन्हीं के द्वारा स्थित होते हैं व अपने-अपने मार्गों पर गति करते हैं, परन्तु बलों के मूल कारण को वर्तमान विज्ञान नहीं जानता । वह नाना प्रकार के फील्ड्स को बलों का कारण मानता है परन्तु फील्ड और बल दोनों में कौन पहले है और जो पहले है, उसकी उत्पत्ति का मूल कारण क्या है, यह कोई नहीं जानता। वस्तुतः सभी बलों का मूल कारण चेतन तत्त्व परमात्मा ही है, जड़ पदार्थ में अपना कोई बल नहीं होता। सभी बलों का मूल कारण 'ओ३म्' रश्मि और इसका कारण ब्रह्म । इसी कारण यहाँ 'अश्वः' पद का अर्थ हमने परमात्या किया है और उसमें स्थित जगत अश्वत्थ कहता है। यह अश्वत्थ का दूसरा अर्थ है, प्रथम अर्थ अनित्य है, ही । बलों के गम्भीर विज्ञान को समझने के लिए 'वेद विज्ञान-आलोक' अथवा 'परिचय वैदिक भौतिकी' ग्रन्थ पठनीय हैं।

(सनातनः) ऐसा अनित्य जगत् सनातन भी कहा जाता है, क्योंकि प्रवाह से सृष्टि-प्रलय का चक्र अनादि व अनन्त है। स्मरणीय है कि 'सनातनः पद से सृष्टि को अनादि नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसका विशेषण 'अश्वत्थ' इससे पूर्व विद्यमान है, जिससे इसका विरोध हो जायेगा । यदि 'सनातनः' को ब्रह्म का विशेषण मानें, तब आगे ब्रह्म के लिए 'अमृतम्' विशेषण पिष्टपेषण के समान निरर्थक हो जायेगा। इस कारण 'सनातनः ' विशेषण सृष्टि-प्रलय के प्रवाह के लिए ही प्रयुक्त मानना होगा। यदि 'अश्वत्थ' का अर्थ केवल ब्रह्म में स्थित मानें, तो वह भी तर्कसंगत नहीं, क्योंकि सूक्ष्म पदार्थों के यजन से उत्पन्न कोई भी पदार्थ अनादि नहीं हो सकता । यहाँ गीता में 'सनातनः ' पद के स्थान पर 'अव्ययम् पद विद्यमान है और कहा है कि यह क्षणभंगुर जगत् अव्यय है। आद्य शंकराचार्य जी ने 'अव्यय' पद का अर्थ अनादि किया है परन्तु इससे सृष्टि-प्रलय के प्रवाह को अनादि मानना चाहिए, सृष्टि को नहीं, अन्यथा 'अश्वत्थ' पद से इसका विरोध हो जायेगा। क्योंकि क्षणभंगुर पदार्थ कभी अनादि नहीं हो सकता और अनादि पदार्थ कभी क्षणभंगुर नहीं हो सकता, जैसा कि कहा है-'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः, ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (गीता) ।

गीता में श्लोक का उत्तरार्ध यह है- 'छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्' । यहाँ आचार्य शंकर ने ऋक्, यजुः व साम लक्षणों वाले छन्दों को जगत् रूपी वृक्ष के पर्ण (पत्ते) कहा है। छन्द के निर्वचन में महर्षि यास्क का कथन है- 'छन्दांसि च्छादनात् (निरु.७.१२) जिस प्रकार वृक्ष को उसके पत्ते आच्छादित किये रहते हैं, वैसे ही छन्द रश्मियाँ सृष्टि के सभी पदार्थों को आच्छादित किये रहती हैं। जिस प्रकार वृक्ष में पत्ते वायु मण्डल से आक्सीजन व प्रकाश को लेकर सम्पूर्ण वृक्ष को पुष्ट करते हैं वैसे ही छन्द रश्मियाँ 'ओ३म्' रश्मियाँ के माध्यम से प्रकाश व बल आदि गुणों को प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत् को बल व गति आदि प्रदान करती हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि छन्द रश्मियों के संघनन से ही बनी है। इस कारण भी छन्दों को पर्ण कहा है, क्योंकि ये ही सम्पूर्ण सृष्टि को पूर्णतः भरे हुए हैं। इसे हमने अपने 'वैदिक रश्मि सिद्धान्त' के रूप में 'वेद विज्ञान - आलोक' ग्रन्थ में विस्तार से समझाया है।

जगत् का वर्णन करने के पश्चात् उस ब्रह्म के गुणों की चर्चा करते हैं, जो गुण उस ब्रह्म में ही हैं, अन्य किसी में नहीं -

(तत्, एव) वह परोक्ष तत्त्व ब्रह्म ही (शुक्रम्) अत्यन्त

क्रमशः पृ. ६.....

जाति, वर्ण और स्वामी दयानंद

-रमेश आर्य

वर्णव्यवस्था जन्मना है या कर्मणा। यदि उसे जन्मना माना जाय तो वह जातिगत भेदभाव को निर्माण करने का एक महत्त्वपूर्ण कारण सिद्ध होती है। ऋषि दयानन्द कर्मणा वर्णव्यवस्था के पक्षधर हैं। उनकी यह धारणा थी कि जन्मना वर्णव्यवस्था तो पाँच-सात पीढ़ियों से शुरु हुई है, अतः उसे पुरातन या सनातन नहीं कहा जा सकता। अपने तार्किक प्रमाणों द्वारा उन्होंने जन्मना वर्णव्यवस्था का सशक्त खंड़न किया है। उनकी दृष्टि में जन्म से सब मनुष्य समान हैं, जो जैसे कर्तव्य-कर्म करता है, वह वैसे वर्ण का अधिकारी होता है।

अस्पृश्य अछूत-दलित शब्द का विवेचन प्रस्तुत करते हुए डा. कुशलदेव शास्त्री लिखते हैं कि दलितोद्धार से पूर्व दलितों के लिए सार्वजनिक सामाजिक क्षेत्र में अस्पृश्य और अछूत शब्द प्रचलित थे ,लेकिन जब समाज-सुधार के बाद समाज में यह धारणा बनने लगी कि कोई भी अस्पृश्य और अछूत नहीं है, तो धीरे-धीरे अस्पृश्य के स्थान पर दलित शब्द रुढ़ हो गया। स्वाभाविक रूप से अस्पृश्योद्धार वा अछूतोद्धार का स्थान भी दलितोद्धार ने ले लिया। मानसिक परिवर्तन ने पारिभाषिक संज्ञा को भी परिवर्तित कर दिया।

प्रदीर्घ समय तक सामाजिक, आर्थिक आदि दृष्टि से जिनका दलन किया गया, कालान्तर में उन्हें ही दलित कहा गया। पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार जब यह महसूस किया जाने लगा कि शुद्धि और दलितोद्धार दोनों चीजें एक सी नहीं हैं, दलितों की हीन दशा के लिए सवर्ण समझे जाने वाले लोग ही जिम्मेदार हैं, जिन्होंने जाति के करोड़ों व्यक्तियों को अछूत बना रखा है। उन्हें मानवता का अधिकार देना सवर्णो का कर्तव्य है। इस विचार को सामने रखकर आर्य समाज के कार्यकर्ताओं ने अछूतों के लिए दलित और अछूतों के उद्धार कार्य के लिए दलितोद्धार की संज्ञा दे दी। तभी से अछूतों की शुद्धि के संदर्भ में दलितोद्धार संज्ञा प्रचलित हो गयी।

यह बात अविस्मरणीय है कि आर्य समाज के समाज सुधार आंदोलन ने ही दलित-आन्दोलन को दलित और दलितोद्धार जैसे सक्षम शब्द प्रदान किये हैं।

महर्षि दयानन्द अपने ही नहीं सबके मोक्ष की चिंता करने वाले थे। किसी जाति-सम्प्रदाय वर्ग विशेष के लिए नहीं, अपितु सारे संसार के उपकार के लिए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी।

सन् १८८० में काशी में एक दिन एक मनुष्य ने वर्ण व्यवस्था को जन्मगत सिद्ध करने के उद्देश्य से महाभाष्य का निम्न श्लोक प्रस्तुत किया-

विद्या तपश्च योनिश्च एतद् ब्राह्मण कारकम्।

विद्या तपोभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः।। ४/१/४८।।

अर्थात् ब्राह्मणत्व के तीन कारक हैं –१) विद्या, २) तप और ३) योनि। जो विद्या और तप से हीन है वह जात्या (जन्मना) ब्राह्मण तो है ही।

ऋषि दयानन्द ने प्रति खंडन में मनु का यह श्लोक प्रस्तुत किया-

यथा काष्ठमयो हस्ती, यश्चा चर्ममयो मृगः।

यश्च विप्रोऽनधीयान- स्त्रयस्ते नाम बिभ्रति।।

मनु०(२,१५७)

अर्थात् जैसे काष्ठ का कटपुतला हाथी और चमड़े का बनाया मृग होता है, वैसे ही बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण होता है। उक्त हाथी, मृग और विप्र ये तीनों नाममात्र धारण करते हैं

ऋषि दयानन्द से पूर्व और विशेष रूप से मध्यकाल से ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी वर्णस्थ व्यक्तियों को शूद्र समझा गया था, अतः क्रमशः मुगल और आंग्ल काल में महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी महाराज, बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ और कोल्हापुर नरेश राजर्षि शाहू महाराज को उपनयन आदि वेदोक्त संस्कार कराने हेतु आनाकानी करने वाले ब्राह्मणों के कारण मानसिक यातनाओं के बीहड़ जंगल से गुजरना पड़ा था।

ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः अर्थात् ज्ञानी हुए बिना इनसान की मुक्ति संभव नहीं है। अतः ऋषि दयानन्द का दलितोद्धार की दृष्टि से भी सब से महान् कार्य यह था कि उन्होंने सबके साथ दलितों के लिए भी वेद-विद्या के दरवाजे खोल दिए। मध्यकाल में स्त्री-शूद्रों के वेदाध्ययन पर जो प्रतिबंध लगाये गए थे, आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने अपने मेधावी क्रांतिकारी चिंतन और व्यक्तित्व से उन सब प्रतिबंधों को अवैदिक सिद्ध कर दिया। ऋषि दयानन्द के दलितोद्धार के इस प्रधान साधन और उपाय में ही उनके द्वारा अपनाये गए अन्य सभी उपायों का समावेश हो जाता है, जैसे-

१) दलित स्त्री-शूद्रों को गायत्री मंत्र का उपदेश देना। २) उनका उपनयन संस्कार करना। ३) उन्हें होम-हवन करने का अधिकार प्रदान करना। ४) उनके साथ सहभोज करना। ५) शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षा वस्त्र और खान पान हेतु उन्हें समान अधिकार प्रदान करना। ६) गृहस्थ जीवन में पदार्पण हेतु युवक-युवतियों के अनुसार (अंतरजातीय) विवाह करने की प्रेरणा देना आदि।

डा. आंबेडकर ने भी स्वीकार किया है कि-''स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वर्णव्यवस्था बुद्धि गम्य और निरूपद्रवी है

डा. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के उपकुलपति, महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध वक्ता प्राचार्य शिवाजीराव भोसले जी ने अपने एक लेख में लिखा है,'राजपथ से सुदूर दुर्गम गांव में दलित पुत्र को गोदी में बिठाकर सामने बैठी हुई सुकन्या को गायत्री मंत्र पढ़ाता हुआ एकाध नागरिक आपको दिखाई देगा तो समझ लेना वह ऋषि दयानन्द प्रणीत का अनुयायी होगा।'

आर्यसमाजी न होते हुए भी ऋषि दयानन्द की जीवनी के अध्ययन और अनुसंधान में १५ से भी अधिक वर्ष समर्पित करने वाले बंगाली बाबू देवेंद्रनाथ ने दयानन्द की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए लिखा है,' वेदों के अनधिकार के प्रश्न ने तो स्त्री जाति और शूद्रों को सदा के लिए विद्या से वंचित किया था और इसी ने धर्म के महंतों और ठेकेदारों की गद्दियां स्थापित की थीं, जिन्होंने जनता के मस्तिष्क पर ताले लगाकर देश को रसातल में पहुंचा दिया था। दयानन्द तो आया ही इसलिए था कि वह इन तालों को तोड़कर मनुष्यों को मानसिक दासता से छुड़ाए।' ऋषि दयानन्द के काशी शास्त्रार्थ में उपस्थित पं. सत्यव्रत सामश्रमी ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए लिखा है,''शूद्रस्य वेदाधिकारे साक्षात् वेदवचनमपि प्रदर्शितं स्वामि दयानन्देन यथेमां वाचं ३.. इति।

डा. चन्द्रभानु सोनवणे ने लिखा है,' मध्यकाल में पौराणिकों ने वेदाध्ययन का अधिकार ब्राह्मण पुरुष तक ही सीमित कर दिया था, स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के (२६/२) मंत्र के आधार पर मानव मात्र को वेद की कल्याणी वाणी का अधिकार सिद्ध कर दिया। स्वामीजी इस यजुर्वेद मंत्र के सत्यार्थ द्रष्टा ऋषि हैं।'

ऋषि दयानन्द के बलिदान के ठीक १० वर्ष बाद उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए दादा साहेब खापर्डे ने लिखा था,' स्वामीजी ने मंदिरों में दबा छिपाकर रखे गए वेद भंडार समस्त मानव मात्र के लिए खुले कर दिये। उन्होंने हिंदू धर्म के वृक्ष को महद् योग्यता से कलम करके उसे और भी अधिक फलदायक बनाया।'

'वेद भाष्य पद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन' नामक शोध प्रबंध के लेखक डा. सुधीर कुमार गुप्त के अनुसार 'स्वामी जी ने अपने वेद भाष्य का हिंदी अनुवाद करवाकर वेदज्ञान को सार्वजनिक संपत्ति बना दिया।'

पं. चमूपति जी के शब्दों में 'दयानन्द की दृष्टि में कोई अछूत न था। उनकी दयाबल-बली भुजाओं ने उन्हें अस्पृश्यता की गहरी गुहा से उठाया और आर्यत्व के पुण्य शिखर पर बैठाया था।'

हिंदी के सुप्रसिद्ध छायावादी महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखा है ''देश में महिलाओं, पतितों तथा जाति-पाति के भेदभाव को मिटाने के लिए महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज से बढ़कर इस नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया। आज जो जागरण भारत में दीख पड़ता है, उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्य समाज को है।'

महाराष्ट्र राज्य संस्कृति संवर्धन मंडल के अध्यक्ष मराठी विश्व कोश निर्माता तर्क-तीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी ऋषि दयानन्द की महत्ता लिखते हुए कहते हैं, 'सैकड़ों वर्षो से हिंदुत्व के दुर्बल होने के कारण भारत बारंबार पराधीन हुआ। इसका प्रत्यक्ष अनुभव महर्षि स्वामी दयानन्द ने किया। इसलिए उन्होंने जन्मना जातिभेद और मूर्तिपूजा जैसी हानिकारक रूढ़ियों का निर्मूलन करने वाले विश्वव्यापी महत्वाकांक्षा युक्त आर्य धर्म का उपदेश किया। इस श्रेणी के दयानन्द यदि हजार वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए होते, तो इस देश को पराधीनता के दिन न देखने पड़ते। इतना ही नहीं, प्रत्युत विश्व के एक महान् राष्ट्र के रूप में भारतवर्ष देदीप्यमान होता।

''सत्यार्थप्रकाश के अनमोल वचन''

विषयः- ''ग्रहों के फल''

प्रश्नः ग्रहों का फल होता है वा नहीं ?

उत्तरः जैसा पोपलीला का है वैसा नहीं, किन्तु जैसा सूर्य चन्द्रमा की किरण द्वारा ऊष्णता, शीतलता अथवा ऋतुवत्कालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल-प्रतिकूल सुख-दुःख के निमित्त होते हैं।

परन्तु जो पोप लीला वाले कहते हैं, सुनो महाराज! सेठजी यजमानों तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्यादि क्रूर घर में आए हैं, अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है, तुमको बड़ा विघ्न होगा, घर-द्वार छुड़ाकर परदेश में घुमावेगा, परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप,पूजा-पाठ करवाओगे तो दुःख से बचोगे।

इनसे कहना चाहिए कि सुनो पोप जी! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है ? ग्रह क्या वस्तु है ?

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मण दैवतम्।।

देखो ! कैसा प्रमाण है, देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं, इसलिए ब्राह्मण देवता कहाते हैं।

क्योंकि चाहे उस देवता को मन्त्र के बल से बुला, प्रसन्न कर, काम सिद्ध कराने का हमारा ही अधिकार है।

जो हम में मन्त्र शक्ति नहीं होती तो तुम्हारे-सै नास्तिक हमको इस संसार में रहने ही न देते।

जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं, वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे ? देवता ही उनसे दुष्ट काम कराते होंगे ? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भी भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं, उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो तो, उन मन्त्रों से देवताओं को वश कर, राजाओं के कोष उठवा कर, अपने घर में भरकर बैठ के आनन्द क्यों नहीं भोगते ?

घर-घर में शनैश्चरादि के तेल आदि का छायादान लेने को मारे-मारे क्यों फिरते हो ? और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके चाहो जितना धन लिया करो, बिचारे गरीबों को क्यों लूटते हो ?

साभार-सोशल मीडिया

घर घर यज्ञ से पर्यावरण करें शुद्ध व मनोकामना करें पूर्ण

-डॉ. स्वेतकेतु शर्मा

आज के विज्ञान के क्षेत्रों में असाधारण प्रगति ,देश में विभिन्न घातक रोगों के सरकारी दावें तथा देश में फैल रहे प्लेग, तपेदिक, कोढ, स्वान फ्लू, डेंगू, मलेरिया, वायरल फीवर, एड्स, चर्म रोग, ह्दय रोग , गुर्दा रोग, कोरोना वायरस आदि की उपस्थिति से निरंतर प्रसार से विश्व सकते में है, दिनोंदिन बढता चला जा रहा है, इन रोगों के पीछे गन्दगी, गरीबी, आवादी, औद्यौगिकीकरण, वैभव विलासिता, अदूरदर्शी योजनाएं व अवव्हारिक नीतियां, आपसी सामन्जस्य का अभाव व दृढ़ इच्छा शक्ति का न होना भी हैं।

भारतीय श्रृषि मुनियों के वैदिक चिन्तन पर आधारित यज्ञ मानव समुदाय के लिए महत्वपूर्ण होरहा है। वेदों के परिपेक्ष में यज्ञ वैदिक संस्कृति व आयुर्वेद के प्राण है। वेदों में 'यज्ञो वै श्रैष्ठतम कर्म' कहा गया है अर्थात यज्ञ जीवन का श्रैष्ठतम कर्म है, यज्ञ को कर्मकांड की परिधि के साथ वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखने की जरुरत है ।विभिन्न रोगों की रोकथाम व शारीरिक मानसिक पर्यावरण विशुद्ध करने तथा मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिये यज्ञ थैरेपी या यज्ञ महत्त्वपूर्ण है ।यज्ञ से प्रदूषण को अल्प करने तथा वायुमंडल को आध्यात्मिक रूप से शुद्ध करने हेतु किया जाता है अपितु यज्ञ के इस रहस्य के साथ शारिरीक स्वास्थ्य व वातावरण में व्यापक रूप से व्याप्त विभिन्न प्रकार के वायरल ,वैक्टेरियल, फन्गस व शरीर के विभिन्न अंग प्रत्यंगों में व्याप्त रोगों को निष्क्रीय करने की वैदिक दार्शनिक वैज्ञानिक प्रमाणिक विधा भी है।

शरीर को चलाने के लिए रस,रक्त,स्नायु विहीन नाणियां होती है ,इसको प्रभावित करने के लिये आधुनिक चिकित्सा में इन्जेक्शन जो इन्ट्रावेनस ,सबकुटेनियस,मस्कुलर आदि के द्वारा औषधि के माध्यम से चिकित्सा की जाती है व की जा रही हैं, परन्तु इससे भी कहीं सूक्ष्म वायु में मिश्रित हो कर शरीर में पहुंचाने वाली यदि कोई विधा है तो वह आयुर्वेदीय वैदिक यज्ञ थैरेपी ही है, यज्ञ का वैज्ञानिक आधार भी यही है कि अग्नि अपने में जलाई गई वस्तु को करोड़ों गुना अधिक सूक्ष्म बना देती है, प्रयोग के रूप में देखें तो एक लाल मिर्च अपने में उतनी तीखी नहीं होती परन्तु अग्नि में डाल कर जलाया जाये तो उसका प्रभाव दूर दूर तक फैलता है। वैज्ञानिक स्तर पर फ्रांस के वैज्ञानिक डा० हाफकिन व डा० कर्नल किंग ने अग्नि के सूक्ष्मीकरण सामर्थ्यसिद्धांत के आधार पर प्रमाणित भी किया है। उन्होने आग में घी जलाने व चावल, केसर के धुंये से वातावरण की शुद्धता को प्रमुखता से प्रमाणित किया। यही यज्ञ थैरेपी का प्रारम्भिक स्वरूप है।

आयुर्वेदीय यज्ञ से अग्नि में पदार्थ डालने पर स्थूल रूप सूक्ष्म रूप में परिवर्तित हो जाता है व होम द्रव्यों को परमाणु रूप करके वायु व जल के साथ मिलकर शुद्ध करती है,अग्नि में डालने पर सैकड़ों लोगों को प्रभावित करती है। ग्राह्य के गैसिय व्यापनशील नियमके अनुसार निश्चित ताप व दाब पर गैसों की व्यापन गतियाँ उसके घनत्व के वर्गमूल के विपरीत अनुपाती होती है अर्थात गैस जितनी हल्की होगी, वह उतनी ही शीध्र वायु में मिल सकेगी। इसी को अथर्ववेद में कहा है' स्वाहा कृतेउर्धवनभ्रसं मारूतं गच्छतम्' यज्ञ में स्वाहा पूर्वक आहुति देने से वायु आकाश में व्याप्त होती है। इसी सिद्धांत के आधार पर अग्नि में डाला गया पदार्थ सूक्ष्म होकर दुर्धन्ध को दूर करता है व शरीर में प्रविष्ठ होकर विभिन्न जीवाणुओं से सुरक्षित रखता है ।

यज्ञ में कपूर,आम की समिधा,घृत,हवन सामग्री का प्रयोग किया जाता है ,(१):-कपूर आसानी से जलता हुआ अग्नि को प्रज्ज्वलित करने के लिये प्रयोग किया जाता ही ,इसका कुछ भाग बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के उड जाता है व वायु को सुगंधित करता है ,शेष भाग सुगंध से दुर्गन्ध को छुपाने में सहयोगी होता है ।

(२):-आम या अन्य लकडियाँ जलने पर ५०० डिग्री तापांश देता है। लकडी का मुख्य भाग सैलुलोज व लिग्रोसेलुलोज में हाईड्रोजन ४७.६२ प्रतिशत, कार्वन २८.५७ प्रतिशत, आक्सीजन २३.८१ प्रतिशत होती है ।सेलुलोज व लिग्रोसेलुलोज के आक्सीजन से हाईड्रोजन बनती है ।सैलुलोज व लिग्रोसेलुलोज के साथ पानी मिल कर कार्वनडाईआक्साईड व पानी बनती है ।यदि वायु निकलने का प्रवेश द्वार बन्द हो तो कुछ मात्रा में कार्वनमोनो आक्साइड निकलती है ,इसलिए यज्ञ खुले स्थान पर होना चाहिए जिससे कार्वन मोनोअ,क्साइड कम बने व वायु में मिल जाये ।यज्ञ कुन्ड की बनावट ,समिधाओं की लम्बाई, उसमें रखने की विधी तथा तापांश वायु की समुचित मात्रा देता है, जिससे कार्वनमोनोआक्साईड वायु में विलुप्त हो जाती है,और कोई हानी नहीं होती है,लकडी की आसवन क्रिया से कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, एल्मोनियम,लोहा, मैगजीन, सोडियम, फास्फेट, गन्धक बनते है ।

(३):-घृत-ग्लिसराल व कार्वोक्सिलिक अम्लों के मेल से बना है ,इसके जलने से कैप्रोनियम ऐल्डीहाइड, नार्मल आप्टिकल ऐल्डीहाइड तथा कई उडनशील ऐल्डीहाइड व कई वाष्पशील बसीय अम्ल बनते है,जो वातावरण को शुद्ध व सुगंधित करते है।

(४):-हवन सामग्री अग्नि में भलीभांति प्रज्ज्वलित हो जाती है ,इसमें विभिन्न प्रकार की बनौषधियां होती है ,अग्नि में जलने पर वायु में व्याप्त व शरीर में क्रीयाशील वायरस व वैक्टेरिया को निष्क्रियता प्रदान करती है ,इससे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का विकास भी होता है,नकारात्मक ऊर्जा समाप्त होती है।

यज्ञ पर वैज्ञानिक शोध डब्लू.एच.ओ ने विश्व सर्वेक्षण में स्पष्ट किया है कि मानव जीवन के हितार्थ वैज्ञानिक जगत में आ रही एन्टीवायोटिक का प्रभाव आगे आने वाले समय में प्रभाव हीन हो रहा है,यदि डब्लू.एच.ओ के इस सर्वेक्षण को मान लिया जाये तो आगे आने वाले समय में स्थिति भयंकर हो सकती है ,जो अभी भी विभिन्न वायरस रोगों की चिकित्सा में एन्टीवायोटिक के निष्प्रभावित होने का संकेत दे रही है,इसीलिए वेद में सृष्टि के आदिकाल में ही कहा हैआयुर्यज्ञेनकल्पतामजीवन की यज्ञ से रक्षा करो, क्यो की यज्ञ में ही वह शक्तियां है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवाणुओं को निष्क्रिय कर सकती है ,वैज्ञानिकों में डा फुन्दन लाल जी ,डा सत्य प्रकाश सरस्वती, डा. राम प्रकाश, डा० टेले, डा० टोकीन, राष्ट्रीय बनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ, उ प्र प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, डा० कर्नल हाफकिन, डा० किंग आदि ने अनेकों प्रयोगों व अनुसंधान ने स्पष्ट किया है कि 'यज्ञ मे डाली गई विभिन्न बनोषधियां सूक्ष्म वायु में मिश्रित हो कर पर्यावरण को विशुद्ध करती है व शरीर को स्वास्थ्य रखती है तथा मनोकामनाओं को पूर्ण करती है।यज्ञ में डाली गई बस्तुयें करोडों गुना सूक्ष्म होकर विभिन्न वायरस वैक्टीरिया को निष्क्रिय करके शरीर को खतरनाक वायरस से सुरक्षित करती है,अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने अपने अनेकों प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि एक दिन यज्ञ करने से १०० यार्ड क्षेत्र में एक महा तक प्रदूषण नहीं हो सकता है।

इसप्रकार वैज्ञानिकों ने यह भी प्रमाणित किया है कि यज्ञ से शरीर को उर्जावान **WBC** नष्ट नहीं होते है अपितु बढ जाते है तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढाते है, यज्ञ में प्रयोग करने के लिये कपूर, आम या अन्य समिधाएं, गाय का शुद्ध घृत, हवन सामग्री से वातावरण शुद्ध व शरीर निरोगी व सकारात्मक उर्जा प्राप्त होती है, यज्ञ खुले स्थान या कमरे में करना हो तो खिडकियां खुली होनी चाहिए तथा दर्शन, श्रवण, गन्ध इन्द्रियों से सकारात्मक उर्जा प्राप्त होती है, यज्ञ में वेदमंत्रों के उच्चारण से शरीर मैं सकारात्मक उर्जा प्राप्त होती है ।यज्ञ शाला में तावें के पात्र से निकलने वाली तरंगों से सकारात्मक उर्जा प्राप्त होती है ।यज्ञ में विशेष बनौषधियों से बचावः-वायरल रोगों में निम्न बनौषधियों को एक किलो सामिग्री में मिलाकर दैनिक यज्ञ करने से बातावरण को प्रदूषित होने से बचाता है :- ''गूगल ५०ग्राम, सफेद चंदन २५ग्राम, लाल चंदन २५ग्राम, अगर व तगर ५० ग्राम, चिरौजी व खोपड ५०ग्राम, नारियल का बुरादा ७५ ग्राम, जायफल व लौगं ५० ग्राम, मुन्नक्का ५०ग्राम, किशमिश व छुआरा ७५ ग्राम , बडी इलायची ५०ग्राम, गुलाब के फूल सूखे ५० ग्राम, बडी हर्र ५० ग्राम, गिलोय १००ग्राम , साठी के चावल ५०ग्राम, सहदेव व जटामासी व सतावर १०० ग्राम, कूट ५०ग्राम, ब्राह्मी ७५ ग्राम, काले तिल ७५ ग्राम, अश्वगंधा २५ ग्राम, चिरायता २५ ग्राम , हूपकला २५ग्राम सुदर्शन की पत्ते २५ ग्राम 'अतः स्पष्ट है कि वर्तमान परिस्थितियों व परिप्रेक्ष्य मे विभिन्न वायरस,वैक्टेरिया व कोरोनावायरस को वातावरण से समूल नष्ट करने के लिये श्रृषि मुनियों के द्वारा प्रतिपादित यज्ञ विधा को सम्पूर्ण विश्व में अपनाना पडेगा , घर घर यज्ञ से वातावरण को विशुद्ध करने का प्रयास करें,शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढाये ,मानसिक तनाव को दूर करें ,सकारात्मक सोच उत्पन्न करें, विश्व,देश ,समाज,परिवार से को सुख शान्ति सफलता व शारीरिक मानसिक व वातावरण के पर्यावरण को शुद्ध करने के लिए यज्ञ को जीवन्त करें और मनोकामनाएं की सफलता को गौरवान्वित करें।

-पूर्व सदस्य हिन्दी सलाहकार समिति भारत सरकार

मनुष्य जाति का एकमात्र धर्म- मानव धर्म अर्थात् वैदिक धर्म

धर्म का संस्थापक कौन है? धर्म की परिभाषा क्या है? धर्म और मत में अंतर क्या हैं?

-डा. मुमुक्षु आर्य

(क) धर्म के संस्थापक कौन है?

हिन्दू, मुस्लिम,सिख, जैन बौद्ध, ईसाई धर्म नहीं अपितु मत हैं। संसार में सभी मत-मतान्तर को चलाने वाले सब मनुष्य है। जबकि धर्म केवल एक है- वैदिक धर्म, जिसे किसी मनुष्य ने नहीं चलाया। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर द्वारा वेदों का ज्ञान समस्त मनुष्य जाति को मार्गदर्शन हेतु प्रदान किया गया। तभी से वैदिक धर्म चलता आया है। कालांतर में धर्म के स्थान पर बहुत सारे मत प्रचलित हो गए। समाज इन मतों को ही धर्म समझने लगा। यही मत-मतान्तर आपसी झगडे का कारण है। वैदिक धर्म का ज्ञान देने वाले कोई मनुष्य विशेष नहीं अपितु ईश्वर ही है। दूसरा, धर्म की परिभाषा को जानना आवश्यक है।

(ख) धर्म का परिभाषा क्या हैं?

१. धर्म संस्कृत भाषा का शब्द हैं जोकि धारण करने वाली धृ धातु से बना हैं। ''धार्यते इति धर्मः'' अर्थात जो धारण किया जाये वह धर्म हैं। अथवा लोक परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु सार्वजानिक पवित्र गुणों और कर्मों का धारण व सेवन करना धर्म हैं। दूसरे शब्दों में यहभी कह सकते हैं की मनुष्य जीवन को उच्च व पवित्र बनाने वाली ज्ञानानुकुल जो शुद्ध सार्वजानिक मर्यादा पद्धति हैं वह धर्म हैं।

२. जैमिनी मुनि के मीमांसा दर्शन के दूसरे सूत्र में धर्म का लक्षण हैं लोक परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु गुणों और कर्मों में प्रवृति की प्रेरणा धर्म का लक्षण कहलाता हैं।

३. वैदिक साहित्य में धर्म वस्तु के स्वाभाविक गुण तथा कर्तव्यों के अर्थों में भी आया हैं। जैसे जलाना और प्रकाश करना अग्नि का धर्म हैं और प्रजा का पालन और रक्षण राजा का धर्म हैं।

४. मनुस्मृति ६.९ में धर्म की परिभाषा- धृतिः क्षमा दमोअस्तेयं शौचं इन्द्रिय निग्रहः धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं, अर्थात धैर्य,क्षमा, मन को प्राकृतिक प्रलोभनों में फँसने से रोकना, चोरी त्याग, शौच, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि अथवा ज्ञान, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दस लक्षण हैं। दूसरे स्थान पर कहा हैं आचारःपरमो धर्म १/१०८ अर्थात सदाचार परम धर्म है।

५. महाभारत में भी लिखा हैं- धारणाद धर्ममित्याहुः,धर्मो धार्यते प्रजाः अर्थात जो धारण किया जाये और जिससे प्रजाएँ धारण की हुई है वह धर्म है।

६. वैशेषिक दर्शन के कर्ता महा मुनि कणाद ने धर्म का लक्षण यह किया है- यतोअभयुद्य निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः अर्थात जिससे अभ्युदय(लोकोन्नति) और निश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि होती हैं, वह धर्म है।

७. स्वामी दयानंद के अनुसार धर्म की परिभाषा- जो पक्षपात रहित न्याय सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार है, उसी का नाम धर्म और उससे विपरीत का अधर्म हैं, पक्षपात रहित न्याय आचरण सत्य भाषण आदि युक्त जो ईश्वर आज्ञा वेदों से अविरुद्ध हैं, उसको धर्म मानता हूँ, इस काम में चाहे कितना भी दारुण दुःख प्राप्त हो , चाहे प्राण भी चले ही जावें, परन्तु इस मनुष्य धर्म से पृथक कभी भी न होवें।

(ग) धर्म और मत/मजहब में क्या अंतर हैं?

१. धर्म और मजहब समान अर्थ नहीं हैं और न ही धर्म ईमान या विश्वास का पर्याय हैं।

२. धर्म क्रियात्मक वस्तु हैं मजहब विश्वासात्मक वस्तु हैं।

३. धर्म मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल अथवा मानवी प्रकृति का होने के कारण स्वाभाविक हैं और उसका आधार ईश्वरीय अथवा सृष्टि नियम हैं। परन्तु मजहब मनुष्य कृत होने से अप्राकृतिक अथवा अस्वाभाविक हैं। मजहबों का अनेक व भिन्न भिन्न होना तथा परस्पर विरोधी होना उनके मनुष्य कृत अथवा बनावटी होने का प्रमाण हैं।

४. धर्म के जो दस लक्षण मनु महाराज ने बतलाये हैं, वह सभी मानव जाति के लिए एक समान है और कोई भी सभ्य मनुष्य उसका विरोधी नहीं हो सकता। मजहब अनेक हैं और केवल उसी मजहब को मानने वालों द्वारा ही स्वीकार होते हैं। इसलिए वह सार्वजानिक और सार्वभौमिक नहीं हैं। कुछ बातें सभी मजहबों में धर्म के अंश के रूप में हैं इसलिए उन मजहबों का कुछ मान बना हुआ हैं।

५. धर्म सदाचार रूप हैं अतः धर्मात्मा होने के लिये सदाचारी होना अनिवार्य हैं। परन्तु मजहबी अथवा पंथी होने के लिए सदाचारी होना अनिवार्य नहीं हैं। अर्थात जिस तरह तरह धर्म के साथ सदाचार का नित्य सम्बन्ध हैं उस तरह मजहब के साथ सदाचार का कोई सम्बन्ध नहीं हैं। क्योंकि किसी भी मजहब का अनुनायी न होने पर भी कोई भी व्यक्ति धर्मात्मा (सदाचारी) बन सकता हैं।परन्तु आचार सम्पन्न होने पर भी कोई भी मनुष्य उस वक्त तक मजहबी अथवा पन्थाई नहीं बन सकता जब तक उस मजहब के मंतव्यों पर ईमान अथवा विश्वास नहीं लाता।

६. धर्म ही मनुष्य को मनुष्य बनाता हैं अथवा धर्म अर्थात धार्मिक गुणों और कर्मों के धारण करने से ही मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त करके मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता हैं। दूसरे शब्दों में धर्म और मनुष्यत्व पर्याय हैं। क्योंकि धर्म को धारण करना ही मनुष्यत्व हैं। कहा भी गया हैं- खाना,पीना,सोना,संतान उत्पन्न करना जैसे कर्म मनुष्यों और पशुओं के एक समान हैं। केवल धर्म ही मनुष्यों में विशेष हैं जोकि मनुष्य को मनुष्य बनाता हैं। धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान हैं। परन्तु मजहब मनुष्य को केवल पन्थाई या मजहबी और अन्धविश्वासी बनाता हैं। दूसरे शब्दों में मजहब अथवा पंथ पर ईमान लाने से मनुष्य उस मजहब का अनुनायी अथवा ईसाई अथवा मुस्लमान बनता हैं न कि सदाचारी या धर्मात्मा बनता हैं।

७. धर्म मनुष्य को ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़ता हैं और मोक्ष प्राप्ति निमित धर्मात्मा अथवा सदाचारी बनना अनिवार्य बतलाता हैं परन्तु मजहब मुक्ति के लिए व्यक्ति को पन्थाई अथवा मजहबी बनना अनिवार्य बतलाता हैं। और मुक्ति के लिए सदाचार से ज्यादा आवश्यक उस मजहब की मान्यताओं का पालन बतलाता हैं। जैसे अल्लाह और मुहम्मद साहिब को उनके अंतिम पैगम्बर मानने वाले जन्नत जायेगे चाहे वे कितने भी व्यभिचारी अथवा पापी हो जबकि गैर मुसलमान चाहे कितना भी धर्मात्मा अथवा सदाचारी क्यों न हो वह दोजख अर्थात नर्क की आग में अवश्य जलेगा क्योंकि वह कुरान के ईश्वर अल्लाह और रसूल पर अपना विश्वास नहीं लाया हैं।

८. धर्म में बाहर के चिन्हों का कोई स्थान नहीं हैं क्योंकि धर्म लिंगात्मक नहीं हैं - न लिंगम धर्मकारणं अर्थात लिंग (बाहरी चिन्ह) धर्म का कारण नहीं है। परन्तु मजहब के लिए बाहरी चिन्हों का रखना अनिवार्य हैं।

क्रमशः पृ. ७.....

पृष्ठ ३ का शेष.....

शीघ्र क्रियाओं को करने वाला एवं सभी ज्योतियों का प्रकाशक है । वह ब्रह्म सर्वव्यापक होने से सर्वत्र एक साथ क्रियाओं को जन्म देने से शुक्र कहा गया है। जगत् की सभी क्रियाओं, बलों व प्रकाशादि गुणों के पीछे 'ओ३म्' रश्मियाँ ही ओ३म् परमेश्वर के हस्तरूप हैं, जो सर्वत्र एक साथ क्रियाओं को जन्म देने में समर्थ होती हैं। 'एव' पद स्पष्ट करता है कि ऐसा शीघ्रकारी व प्रकाशक पदार्थ केवल ब्रह्म ही है, अन्य कोई नहीं । इस सृष्टि में जो भी क्रियाएँ हो रही हैं, उनमें सर्वाधिक त्वरित क्रिया 'ओ३म्' रश्मि ही करती है, इसलिए वह ब्रह्म शुक्र कहलाता है । (तत्, ब्रह्म) उस परमात्मा को ब्रह्म भी कहते हैं, क्योंकि वह सबसे बड़ा है । वह विस्तार, बल, ज्ञान आदि सभी दृष्टि से अनन्त है, इस कारण उसे ब्रह्म कहते हैं ।

(तत्, एव, अमृतम्, उच्यते) वह परमात्मा अविनाशी होने कहाता है। उसका ज्ञान, बल व क्रिया सभी स्वाभाविक रूप से सर्वदा समान रूप से विद्यमान रहते हैं, जबकि दो अन्य नित्य सत्ताओं (प्रकृति व जीवात्मा) के गुणों में अन्तर आता रहता है । महाप्रलय में प्रकृति के सभी तीनों गुण सो जाते हैं अर्थात् पूर्ण निष्क्रिय हो जाते हैं। बद्ध जीवात्मा भी प्रसुप्त अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं । मुक्त आत्मा के ज्ञान, बल व क्रिया में भी मुक्त से बद्ध वा बद्ध से मुक्त अवस्था में जाने से भेद उत्पन्न होता रहता है। इस प्रकार केवल ईश्वर ही है, जिसमें अर्थात् जिसके गुणों में कोई अन्तर नहीं आता, भले ही वह उन गुणों का उपयोग करे वा न करे, इसी कारण इस प्रकरण में 'अमृतम्' पद के साथ भी 'एव' पद का प्रयोग किया गया है।

(तस्मिन्, लोकाः, श्रिताः, सर्वे) उस परमात्मा में ये सभी लोक आश्रित हैं। यहाँ लोक का अर्थ प्रकाशित लोक, अप्रकाशित लोक व आकाश के अतिरिक्त छन्द रश्मियों का भी ग्रहण करना चाहिए। इस विषय में ऋषियों का कथन है- छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै. ब्रा. १. ३३२), इमे वै लोकाः (मै.सं.३.७.१०) । यहाँ 'इमे' का अर्थ प्रत्यक्ष पृथिव्यादि तीन लोकों का ग्रहण करना चाहिए। पृथिवी का अर्थ अप्रकाशित लोक व कण, द्युलोक का अर्थ प्रकाशित लोक वा फोटोन तथा अन्तरिक्ष लोक का अर्थ आकाश अर्थात् आकाश महाभूत मानना चाहिए। इन सभी लोकों का अन्तिम आश्रय ईश्वर ही है, क्योंकि वह इन लोकों का मूल उपादान कारण प्रकृति का भी आश्रय है।

(तत्, उ, न, अति, एति, कश्चन) उस ब्रह्म का कोई भी पदार्थ अतिक्रमण नहीं कर सकता । विस्तार, गति, बल, ज्ञान आदि किसी के द्वारा भी सृष्टि का कोई भी उत्पन्न पदार्थ अथवा प्रकृति व जीव जैसा अनादि व अविनाशी पदार्थ ही उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता । वह 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म व महान् से महान् है। उससे बढकर कोई नहीं, उसके समान भी कोई नहीं, इसीलिए वह अद्वितीय है, अद्वैत है। अद्वैत का अर्थ यह नहीं कि उसके अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की कोई सत्ता ही नहीं, बल्कि इसका अर्थ यह है कि उसके समान कोई नहीं है । यदि कोई सत्ता होती ही नहीं, तो उसकी तुलना करने की न तो आवश्यकता होती और न ही कोई तुलना करने वाला होता, न ही उस पर कोई आश्रित होता और न ही वह किसी का आश्रय होता, न ही वह किसी का उपास्य होता और न ही उसका कोई उपासक होता । इसीलिए अन्य पदार्थों की सत्ता तो है, परन्तु वह ब्रह्म अपने अनुपम गुणों के कारण अद्वितीय है अर्थात् वह ब्रह्म अद्वैत है।

(एतत् वै तत्) यह उपर्युक्त गुणों से युक्त पदार्थ वह ब्रह्म ही है, अन्य कोई नहीं।

भावार्थ-

यह जो प्रत्यक्ष जगत् है, उसका मूल उपादान कारण प्रकृति पदार्थ ब्रह्म द्वारा उत्कृष्टतापूर्वक धारण किया हुआ है। इसके साथ ही मूल प्रकृति पदार्थ सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के भीतर बाहर छिपा हुआ व मिला हुआ रहता है । सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ उस मूल प्रकृत की शाखाएँ हैं, जो ब्रह्म के द्वारा नियन्त्रित रहती हैं। यह नियन्त्रण ब्रह्म से साक्षात् उत्पन्न परा 'ओ३म् रश्मियों के द्वारा होता हैं। परा 'ओ३म् रश्मियाँ ईश्वर व सृष्टि के सभी पदार्थों के मध्य एक सेतु के समान हैं अथवा ये रश्मियाँ ही ब्रह्म के हाथ हैं। ऐसा यह जगत् सदैव नित्य परमात्मा में स्थित रहता है, परन्तु यह अनित्य है। यहाँ यह भी कहा गया है कि यह जगत् सृष्टि-प्रलय के क्रम के रूप में सनातन है अर्थात् सृष्टि-प्रलय का प्रवाह सनातन है, नित्य है। उधर वह ब्रह्म सबका प्रकाशक, शीघ्रकारी, सबसे महान् अर्थात् विस्तार, बल, ज्ञानादि गुणों की दृष्टि से उसके समान कोई नहीं है। इसी कारण उसे अद्वैत कहा जाता है। यहाँ अद्वैत का यह अर्थ नहीं है कि उस ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सत्ता नहीं है, बल्कि उसके समान कोई सत्ता नहीं है। वह ब्रह्म नित्य वा अविनाशी है। उस ऐसे अनुपम ब्रह्म में ही सृष्टि के सभी लोक ठहरे हुए हैं। ऐसे गुणों वाला वह ब्रह्म ही है ।

भारतीय धर्म ग्रंथो और वैदिक धर्म के प्रति दुष्प्रचार

प्रस्तुति-डॉ. डी.के. गर्ग

विषय:विभिन्न मत-मतान्तर अपने अपने मत प्रवर्तक जैसे जैन मत वाले महावीर , कबीर पंथी वाले कबीर साहिब , इस्लामिक मत वाले मुहम्मद साहिब, ईसाई मत वाले ईसा मसीह आदि का वेदों में वर्णन मानते हैं।

सज्जनो हिंदी साहित्य और संस्कृत साहित्य अलंकारों, छंदों और प्रयायवाची शब्दों में होता है जिसमे एक ही शब्द के अनेक अर्थ और अनेक भाव होता है सिर्फ हिंदी साहित्य एक ऐसा साहित्य होता है जिसके अर्थो और भावो को एक अच्छा जानकर साहित्यकार ही समझ सकता है. हिन्दू धर्म में जितने भी वेद लिखे गए है वो संस्कृत साहित्य में लिखे गए है जिसमे श्लोक संस्कृत में लिखे गए है जिनके अर्थो और भावो को समझाना बहुत ही कठिन है. ओच्छी मानसिकता वाले लोग साहित्य के जानकर होकर भी उस साहित्य के अर्थ और भावो का अलग ही अर्थ लगाएंगे उसमे अश्लीलता ही खोजेंगे क्योकि व्यक्ति में जितनी बुद्धि होती है वह उतना ही सोच सकता है उससे ज्यादा नहीं।

उदाहरण के लिए देखिए।

- ऋग्वेद १/३२/६ में महावीर शब्द आया हैं जिसका अर्थ इन्द्र हैं जबकि जैन मत का पालन करने वाले उससे महावीर तीर्थंकर को दर्शाने की कोशिश करते है।
- यजुर्वेद ३२/११ मंत्र में कविर्मनीषी शब्द से कबीरपंथी साकार परमेश्वर को दिखाने का प्रयास करते है जबकि इसी मंत्र में ईश्वर को शुक्रम (सर्वशक्तिमान), अकायम (स्थूल, सूक्षम और कारण शरीर रहित), अवर्णम (छिद्र रहित और नहीं छेद सकने योग्य), अस्नाविरम (नाड़ी आदि बंधन से रहित), शुद्धम (अवि. आदि दोषों से रहित), परिअगात (सब और से व्याप्त), स्वयंभू (जिसके माता-पिता, गर्भवास, जन्म, वृद्धि और मरण आदि नहीं होते), शाश्वतिभ्य (उत्पत्ति और विनाश रहित) कहा गया हैं।
- अथर्ववेद २०/१२७/१-१३ मन्त्रों में नराशंस शब्द से मुहम्मद साहिब की कल्पना कुछ इस्लाम अनुयायी मानते है।
- यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के ईशावास्यम मंत्र में ईशा से ईसा मसीह की तुलना कुछ ईसाई मत को मानने वाले करते है

इसलिए वेदों में इतिहास होने के इस आरोप में कुछ भी बल नहीं है। इससे वेदों में इतिहास सिद्ध नहीं होगा। इसका कारण यह है कि वेदों, ब्राह्मणों और पुराणों के सूक्ष्म अवलोकन से ज्ञात होता है कि संस्कृत के समस्त साहित्य में इतिहास से संबंध रखने वाले असंभव, संभवासंभव और संभव तीन प्रकार के वर्णन पाए जाते हैं। जो तीन भागों में विभाजित हैं। इसमें जितना भाग असंभव वर्णन से संबंध है वह वेद का है और किसी न किसी चमत्कारिक अथवा जातिवाचक पदार्थ से संबंध रखता है। किसी मनुष्य नगर, नदी और देश आदि व्यक्तिवाचक पदार्थ से नहीं परंतु जितना भाग संभवासंभव और संभव वर्णन से संबंध रखता है वह पुराण और ब्राह्मण ग्रंथों में ही आता है वेदों में नहीं।

यह भ्रांति अथवा गलती कहां से शुरू हुई?

परंतु मध्यम कालीन कवियों और पुराणकारों ने वैदिक और ऐतिहासिक समान शब्दों के वर्ण व्यक्तियों का सम्मिलित वर्णन करके महान झंझट फैला दिया है। इसी से पूर्व पुरुषों की चमत्कारिक उत्पत्तियों के गुणों का क्रम चल पड़ा और यहीं से वेदों में ऐतिहासिक घटनाओं की मिथ्या भ्रांति होने लगी।

उदाहरण के तौर पर कल्पना करो कि वेद ने किसी पदार्थ के लिए कोई चमत्कारिक वर्णन किया। उधर ब्राह्मण काल में उसी नाम का कोई मनुष्य हुआ । जिसका चरित्र साधारण मानुषी था । अब कुछ काल बीतने पर किसी कवि ने पुराण काल में कल्पना की और कल्पना में दोनों प्रकार के वर्णन मिला दिए । जो आगे चलकर यह सिद्ध करने की सामग्री बन गए कि दोनों एक ही है। ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कितना भाग ऐतिहासिक है और कितना आलंकारिक।

संस्कृत साहित्य में इस विषय के अनेक प्रमाण विमान हैं। विश्वामित्र और मेनका वेद के चमत्कारिक पदार्थ हैं इधर दुष्यंत और शकुंतला मनुष्य हैं । परंतु दोनों को एक में मिलाने से भरत को इंद्र के यहां जाना पड़ा। इंद्र भी चमत्कारिक पदार्थ है । ऐसी दशा में भरत और दुष्यंत को मेनका और विश्वामित्र के साथ जोड़कर यही तो भ्रम करा दिया गया है कि वेदों में भरत के पूर्वजों का वर्णन है। परंतु यदि वेदों को खोलकर विश्वामित्र मेनका वाले मंत्रों को पढ़िए तो उसमें मानुषी वर्णन लेश मात्र भी नहीं मिलेगा। तो इंद्र के यहां जाने वाले वैदिक भरत का इस अलौकिक भरत से कोई संबंध न दिखेगा।

पृष्ठ ६ का शेष.....

६. धर्म मनुष्य को पुरुषार्थी बनाता हैं क्योंकि वह ज्ञानपूर्वक सत्य आचरण से ही अभ्युदय और मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा देता हैं परन्तु मजहब मनुष्य को आलस्य का पाठ सिखाता हैं क्योंकि मजहब के मंतव्यों मात्र को मानने भर से ही मुक्ति का होना उसमें सिखाया जाता है।

१०. धर्म मनुष्य को ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़कर मनुष्य को स्वतंत्र और आत्म स्वालंबी बनाता हैं क्योंकि वह ईश्वर और मनुष्य के बीच में किसी भी मध्यस्थ या एजेंट की आवश्यकता नहीं बताता। परन्तु मजहब मनुष्य को परतंत्र और दूसरों पर आश्रित बनाता हैं क्योंकि वह मजहब के प्रवर्तक की सिफारिश के बिना मुक्ति का मिलना नहीं मानता।

११. धर्म दूसरों के हितों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति तक देना सिखाता है जबकि मजहब अपने हित के लिए अन्य मनुष्यों और पशुओं की प्राण हरने के लिए हिंसा रुपी कुरबानी का सन्देश देता है।

१२. धर्म मनुष्य को सभी प्राणी मात्र से प्रेम करना सिखाता हैं जबकि मजहब मनुष्य को प्राणियों का माँसाहार और दूसरे मजहब वालों से द्वेष सिखाता हैं।

१३. धर्म मनुष्य जाति को मनुष्यत्व के नाते से एक प्रकार के सार्वजानिक आचारों और विचारों द्वारा एक केंद्र पर केन्द्रित करके भेदभाव और विरोध को मिटाता हैं तथा एकता का पाठ पढ़ाता हैं। परन्तु मजहब अपने भिन्न भिन्न मंतव्यों और कर्तव्यों के कारण अपने पृथक पृथक जत्थे बनाकर भेदभाव और विरोध को बढ़ाते और एकता को मिटाते हैं।

१४. धर्म एक मात्र ईश्वर की पूजा बतलाता हैं जबकि मजहब ईश्वर से भिन्न मत प्रवर्तकध्गुरुध्मनुष्य आदि की पूजा बतलाकर अन्धविश्वास फैलाते हैं।

१५. अमरनाथ यात्रा, केदारनाथ यात्रा, मानसरोवर यात्रा, गणेश विसर्जन यात्रा, दुर्गा विसर्जन यात्रा, कावंड यात्रा, रथयात्रा, हज यात्रा, शिवलिंगपूजा, गणेशपूजा, ग्रहपूजा, मूर्तिपूजा, मजार पूजा, महाकालपूजा, शनिपूजा, तीर्थपूजा, छठपूजा, अवतारवाद, मूर्तियों में प्राणप्रतिष्ठा आदि धर्म नहीं, कोरा अन्धविश्वास हैं, पाखंड हैं ,भेड़ चाल हैं। ध्यान मुद्रा में बैठ कर गायत्री आदि वेद मंत्रों का अर्थ सहित जप, मां बाप की सेवा, सत्याचरण , सब जीवों से प्रेम व परोपकार ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है।

ईश्वर के गुण

-सुभाषिनी आर्य

(१) अजन्माः- ईश्वर को वेद में अजन्मा कहा गया है। यथा ऋग्वेद में कहा है कि-

अजो न क्षां दाधारं पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।

अर्थात् 'वह अजन्मा परमेश्वर अपने अबाधित विचारों से समस्त पृथिवी आदि को धारण करता है।'

इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा है कि ईश्वर कभी भी नस-नाड़ियों के बन्धन में नहीं आता अर्थात् अजन्मा है।

ईश्वर को अजन्मा मानने में सबसे अधिक प्रबल युक्ति यह है कि जन्म के साथ अनेक ऐसी बातें जुड़ी हुई हैं जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विपरित है। जैसे जो जन्मता है वह मृत्यु को भी अवश्य प्राप्त होता है तथा जन्म के साथ ही शरीर आदि में होने वाले दुःखों को सहना पड़ता है जिससे ईश्वर को आनन्दस्वरुप नहीं माना जा सकेगा और जो इस प्रकार से जन्म-मरण के चक्र में पड़ने वाला होगा उसे न तो सर्वव्यापक ही कहा जा सकता है और न सर्वशक्तिमान।

और वेदों में वर्णित ईश्वर के स्वरुप में उसके एक गुण का दूसरे गुण से ऐसा मेल है कि एक गुण से दूसरा गुण स्वतः ध्वनित होने लगता है यथा-सच्चिदानन्द होने से वह निराकार है क्योंकि आकार का तात्पर्य है सावयव होना और सावयव कभी भी सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता क्योंकि अवयवों का संयोग बिना दूसरे के किए नहीं हो सकता। अतः ईश्वर निराकार है और निराकार होने से वह सर्वशक्तिमान है। सर्वशक्तिमान होने से वह न्यायकारी है और न्यायकारी होने से दयालु तथा अजन्मा है। क्योंकि जो जन्म-मरण वाला हो वह सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता न आनन्द स्वरुप ही होता।

(२) ईश्वर अनन्त हैः-

अजन्मा होने से ईश्वर अनन्त है क्योंकि जन्म मृत्यु की अपेक्षा रखता है, मृत्यु अर्थात् अन्त और जन्म एक दूसरे की पूर्वापर स्थितियाँ हैं अतः ईश्वर अनन्त अर्थात् अन्त से रहित है। वेद में ईश्वर को अनन्त बताते हुए कहा है-

अनन्त विततं पुरुत्रानन्तम् अनन्तवच्चा समन्ते।

अर्थात् 'अनन्त ईश्वर सर्वत्र फैला हुआ है' ।।

(३) ईश्वर निर्विकार हैः-

अजन्मादि गुणों की पुष्टि के लिए वेद में ईश्वर को निर्विकार कहा है क्योंकि विकारादि जन्म की अपेक्षा रखते हैं और ईश्वर को 'अज' अर्थात् अजन्मा कहा है। अतः वह निर्विकार अर्थात् शुद्धस्वरुप है। वेद की इसी मान्यता के आधार पर महर्षि पातंजलि ने योग दर्शन में लिखा है-

'क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविषेश ईश्वरः'

अर्थात् जो अविद्यादि क्लेश, कुशल-अकुशल, इष्ट-अनिष्ट और मिश्रफल दायक कर्मो की वासना से रहित है वह सब जीवों से विषेश ईश्वर कहाता है।

(४) ईश्वर अनादि हैः-

ईश्वर का कोई आदि नहीं है इसलिए वह अनादि है क्योंकि आदि के साथ अन्त भी लगा होता है अर्थात् जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी अवश्य होती है और जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी अवश्य होता है। इस विषय में यह विचार करना भी आवश्यक है कि आदि और अन्त क्या है? वास्तव में किसी तत्व के प्रकट होने को उत्पन्न होना कहा जाता है अर्थात् उसका अप्रकट हो जाना अन्त कहलाता है अर्थात् जब परमाणुओं के विशेष संयोग से कोई विशिष्ट वस्तु प्रकट होती है तब उस वस्तु की उत्पत्ति मानी जाती है और परमाणुओं के विखण्डित हो जाने को ही उस वस्तु का नष्ट होना कहा जाता है।

सामवेद में ईश्वर के अनादि स्वरुप को निरुपित करते हुए कहा है-

''जजुषा सनादसि'' अर्थात् ईश्वर सनातन(अनादि) है।

(५) ईश्वर अनुपम हैः-

वेद के अनेक मन्त्रों में ईश्वर को अनुपम कहा है अर्थात् उसके समान शक्ति सम्पन्न अन्य कोई नहीं इसलिए वह अनुपम है। जैसा कि सामवेद में कहा है कि-

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।न क्येवं यथा त्वम् ।।

अर्थात् ईश्वर के समान न ही तो कोई श्रेष्ठ है और न ही उससे ज्येष्ठ है। अथर्ववेद में कहा है 'तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे' अर्थात् संसार में कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे ईश्वर की उपमा दी जा सके इसलिए वह अनुपम है।

(६) सर्वाधारः- वेद की चारों मन्त्र संहिताओं में ईश्वर को समस्त चराचर जगत एवं जीवों का आधार कहा गया है अर्थात् समस्त पृथ्वी आदि लोक-लोकान्तर उसी के आधार पर टिके हैं इसलिए वह सर्वाधार है। परमात्मा की शक्ति का वर्णन करता हुआ उपनिषद कहता है-''सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली और अग्नि ये सब ईश्वर में प्रकाश नहीं कर सकते किन्तु इन सबको प्रकाशित करने वाला एक वही ईश्वर है।''

ऋग्वेद में कहा है-

सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। अर्थात् ईश्वर पृथ्वी और द्युलोक दोनों का आधार है, वही सबका आधार है।

प्रश्नः-जब ईश्वर सबका आधार है तब ईश्वर का आधार क्या है?

उत्तरः-ईश्वर सबका आधार होने के साथ-साथ स्वयं अपना भी आधार है क्योंकि आधार उसको कहा जाता है जो सर्वशक्तिमान है इसलिए वह सबका आधार है और उसका अन्य कोई आधार नहीं हो सकता क्योंकि किसी का आधार उससे अधिक शक्तिशाली ही होता है, लोक में भी हम देखते हैं कि प्रत्येक निर्बल अपने से सबल के आश्रय में ही रहता है और कोई भी अपने से निर्बल के आश्रय में नहीं रहता इसी प्रकार क्योंकि ईश्वर से अधिक शक्ति सम्पन्न अन्य जीवादि कोई नहीं इसलिए उसका कोई आधार नहीं।

उदाहरणार्थ-एक राज्य में सब राजा के आश्रित होते हैं किन्तु राजा किसी के आश्रित नहीं होता इसी प्रकार ईश्वर भी सर्वाधार है। आईये वेद विदित ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना सब मिलकर करें।

आर्य मित्र
नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

.....

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा, मुजफ्फरनगर द्वारा
महामहिम राष्ट्रपति महोदय को ज्ञापन

जिला आर्य प्रतिनिधि सभा मुजफ्फरनगर एवं आर्य समाज शिवपुरी खतौली द्वारा दिनांक १७ मई २०२३ को भारत की राष्ट्रपति महामहिम द्रौपदी मुर्मू जी को समलैंगिक विवाह के विरोध में उप जिलाधिकारी श्री सुबोध कुमार के माध्यम से ज्ञापन दिया गया।

वर्तमान समय में उच्चतम न्यायालय ने इस विषय को लेकर भारत सरकार व न्यायालय में बहस चल रही है। भारतीय संस्कृति व संस्कार से अनभिज्ञ विदेशी मानसिकता व दासता के पिछलग्गू इसे कलंकित करने में लगे हैं। ऐसे समय में आर्य समाज की जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

आर्य समाज शिवपुरी खतौली व जिला आर्य प्रतिनिधि सभा मुजफ्फरनगर के पदाधिकारी गण श्री सत्येंद्र आर्य (अध्यक्ष जिला सभा) श्री कंवर पाल शास्त्री (कार्यवाहक अध्यक्ष) श्री देशपाल आर्य (उप प्रधान) श्री सुरेश फौजी (जिला मंत्री) सर्वश्री महाराज सिंह, महिपाल सिंह, जगदीश सिंह, सुनील आर्य, अजेश आर्य (पुरोहित) भगवान सिंह, सुशील गुर्जर, अनिल आर्य, रण सिंह आर्य आदि ने इस संबंध में ज्ञापन उप जिलाधिकारी महोदय मुजफ्फरनगर को सौंपा।

आर्य शब्द के प्रमाण!!!

सृष्टि की समकालीन पुस्तक ऋग्वेद में:-

(१) कृण्वन्तो विश्वमार्यम।

अर्थ-सारे संसार को 'आर्य' बनाओ।

मनुस्मृति में:-

(२) मद्द मांसा पराधेषु गाम्या पौराः न लिप्तकाः। आर्या ते च निमद्यन्ते सदार्यावर्तृत वासिनः।।

अर्थ-वे ग्राम व नगरवासी जो मद्द,मांस और अपराधों में लिप्त न हों तथा सदा से आर्यावर्तृत के निवासी हैं वे 'आर्य' कहे जाते हैं।

बाल्मीकि रामायण में- (३) सर्वदा मिगतः सदिशः समुद्र इव सिन्धुभिः।

आर्य सर्व समश्चौव व सदैवः प्रिय दर्शनः ।।-(बालकाण्ड)

अर्थ-जिस तरह नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं उसी तरह जो सज्जनों के लिए सुलभ हैं वे 'आर्य' हैं जो सब पर समदृष्टि रखते हैं हमेशा प्रसन्नचित्त रहते हैं।

(४) महाभारत में:- न वैर मुद्दीपयति प्रशान्त, न दर्पयासे हति नास्तिमेति।
न दुगेतोपीति करोव्य कार्य,तमार्य शीलं परमाहुरार्या।।(उद्योग पर्व)

अर्थः-जो अकारण किसी से वैर नहीं करते तथा गरीब होने पर भी कुकर्म नहीं करते उन शील पुरुषों को 'आर्य' कहते हैं।

(५) वशिष्ठ स्मृति में- कर्तृतव्यमाचरन काम कर्तृतव्यमाचरन।
तिष्ठति प्रकृताचारे यः स आर्य स्मृतः ।।

अर्थः-जो रंग,रुप,स्वभाव,शिष्ठता,धर्म,कर्म,ज्ञान और आचार-विचार तथा शील-स्वभाव में श्रेष्ठ हो उसे 'आर्य' कहते हैं।

(६) निरुक्त में यास्काचार्य जी लिखते हैं- आर्य ईश्वर पुत्रः।

अर्थ-'आर्य' ईश्वर के पुत्र हैं।

(७) विदुर नीति में- आर्य कर्माणि रज्यन्ते भूति कर्माणि कुर्वते।
हितं च नामा सूचन्ति पण्डिता भरतर्षभ ।।-(अध्याय १ श्लोक ३०)

अर्थः-भरत कुल भूषण! पण्डित जन्य जो श्रेष्ठ कर्मो में रुचि रखते हैं, उन्नति के कार्य करते हैं तथा भलाई करने वालों में दोष नहीं निकालते हैं वही 'आर्य' हैं।

(८) गीता में- अनार्य जुष्टम स्वर्गम् कीर्ति करमर्जुन।-(अध्याय २ श्लोक २)

अर्थः-हे अर्जुन तुझे इस असमय में यह अनार्यो का सा मोह किस हेतु प्राप्त हुआ क्योंकि न तो यह श्रेष्ड पुरुषों द्वारा आचरित है और न स्वर्ग को देने वाला है तथा न कीर्ति की और ही ले जाने वाला है(यहां पर अर्जुन के अनार्यता के लक्षण दर्शाये हैं)।

(९) चाणक्य नीति में- अभ्यासाद धार्यते विद्या कुले शीलेन धार्यते।
गुणेन जायते त्वार्य,कोपो नेत्रेण गम्यते।।-(अध्याय ५ श्लोक ८)

अर्थः- सतत् अभ्यास से विद्या प्राप्त की जाती है, कुल-उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से स्थिर होता है, आर्य-श्रेष्ठ मनुष्य गुणों के द्वारा जाना जाता है।

(१०) नीतिकार के शब्दों में- प्रायः कन्दुकपातेनोत्पतत्यार्यः पतन्नपि।
तथा त्वनार्ष पतति मृत्पिण्ड पतनं यथा।।

अर्थः- आर्य पाप से लिप्त होने पर भी गेन्द के गिरने के समान शीघ्र ऊपर उठ जाता है अर्थात् पतन से अपने आपको बचा लेता है, अनार्य पतित होता है तो मिट्टी के ढेले के गिरने के समान फिर कभी नहीं उठता।

(११) अमरकोष में:-

महाकुलीनार्य सभ्य सज्जन साधवः।-(अध्याय२ श्लोक ६ भाग ३)

अर्थः- जो आकृति,प्रकृति,सभ्यता,शिष्टता,धर्म,कर्म,विज्ञान,आचार,विचार तथा स्वभाव में सर्वश्रेष्ठ हो उसे 'आर्य' कहते हैं।

(१२) कौटिल्य अर्थशास्त्र में-

व्यवस्थितार्य मर्यादः कृतवर्णाश्रम स्थितिः।

अर्थः-आर्य मर्यादाओं को जो व्यवस्थित कर सके और वर्णाश्रम धर्म का स्थापन कर सके वही 'आर्य' राज्याधिकारी है।

(१३) पंचतन्त्र में- अहार्यत्वादनर्धत्वाद क्षयत्वाच्च सर्वदा।

अर्थः- सब पदार्थो में उत्तम पदार्थ विद्या को ही कहते हैं।

(१४) धम्म पद में:- अरियत्येवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो।

अर्थः- पण्डित जन सदा आर्यो के बतलाये धर्म में ही रमण करता है।

(१५) पाणिनि सूत्र में:- आर्यो ब्राह्मण कुमारयोः।

अर्थः- ब्राह्मणों में 'आर्य' ही श्रेष्ठ है।

(१६) काशी विश्वनाथ मन्दिर के मुख्य द्वार पर-
आर्य धर्मेतराणो प्रवेशो निषिद्धः।

अर्थः-आर्य धर्म से इतर लोगों का प्रवेश वर्जित है।

(१७) आर्यो के सम्वत् में:-
जम्बू दीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते अमुक देशान्तर्गते।

ऐसा वाक्य बोलकर पौराणिक भाई भी संकल्प पढ़ते हैं अर्थात् यह आर्यो का देश 'आर्यावर्तृत' है।

(१८) आचार्य चतुरसेन और आर्य शब्दः-
उठो आर्य पुत्रो नहि सोओ। समय नहीं पशुओं सम खोओ।
भंवर बीच में होकर नायक। बनो कहाओ लायक-लायक।।

अर्थः-तुम्हारा जीवन पशुओं के समान निद्रा के वशीभूत होने के लिए निर्माण नहीं हुआ है। यह समय तुम्हें पुरुषार्थ करने का है, यदि जीवन में तुम पुरुषार्थ करोगे तो किसी कहानी के नायक बनकर समाज के आगे उपस्थित होवोगे।

(१९) पं. प्रकाशचन्द कविरत्न के शब्दों में:-
आर्य-बाहर से आये नहीं, देश है इनका भारतवर्ष।
विदेशों में भी बसे सगर्व, किया था परम प्राप्त उत्कर्ष।।
आर्य और द्रविड जाति हैं, भिन्नचलें यह विदेशियों की चाल।
खेद है कुछ भारतीय भी, व्यर्थ बजाते विदेशियों सम गाल।।

(२०) पं. राधेश्याम कथावाचक बरेली वाले और आर्य शब्दः-

जब पंचवटी में सूर्पणखा राम के पास मोहित होकर अपना विवाह करने की बात राम से कहती है, तब राम उत्तर देते हैं-

हम आर्य जाति के क्षत्रीय हैं, रघुवंशी वैदिक धर्मी हैं।
जो करें एक से अधिक विवाह, कहते वेद उन्हें दुष्कर्मी हैं।।

प्रेषक-चौ. विपिन आर्य

पृष्ठ १ का शेष.....

६.) इस देश में कोई हिन्दू तो मुसलमान और ईसाई बन सकता था लेकिन कोई मुसलमान और ईसाई हिन्दू नहीं बन सकता था । उन्हें हिन्दू धर्म में नही आने दिया जाता था उन्हें अछूत और भ्रष्ट कह कर समाज से नकार दिया जाता था लेकिन दयानंद ने ये बंद रास्ते खोले और शुद्धिकरण की प्रक्रिया चला कर इसाई और मुसलमान बने हुओं को वापिस हिन्दू बनाया ।

७.) उस काल में भारी स्तर पर गौ हत्या होती थी कत्लखाने चलते थे , लाचार और बेसहारा गायो को कत्ल खानों में छोड़ दिया जाता था । इस से द्रवित होकर दयानंद ने रेवाड़ी में पहली गौशाला खोली । ताकि गौमाता का सरक्षण हो । और भारत से गौ हत्या बंद करवाने के लिए लाखो लोगो के हस्ताक्षर करवा कर ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को पत्र लिखा ।

८.) उस समय स्तिथि यह थी की हिन्दुओ के जो बच्चे अनाथ हो जाते थे उन्हें कोई सहारा देने वाला नहीं था इसलिए मुसलमान और ईसाई उन्हें बहला फुसला कर इसाई और मुसलमान बना लेते थे । जब दयानन्द को इस बात का पता चला तो उन्होंने अजमेर के अंदर पहला अनाथालय खोला ।

९.) विधुर तो दूसरी शादी कर सकते थे लेकिन विधवाओं को दुसरे विवाह की आज्ञा नही थी लेकिन दयानंद ने विधवा पुनर्विवाह का आन्दोलन चला कर लाखो विधवाओं की मांग में फिर से सिंदूर भरवा दिया ।

१०.) भारत उस समय अंग्रेजी शासन की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था उस वक्त दयानंद ने सबसे पहले स्वराज्य का नारा दिया और १८५७ की क्रांति की नीव रखी और लाखो भारतीयों को स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई के लिए प्रेरित किया ।

११.) उस समय भारत भिन्न भिन्न भाषाओ में बंटा पड़ा था । जिसके कारण एक कौने से दुसरे कौने में बात रखने के लिए भाषा एक महत्वपूर्ण रोड़ा थी। तब दयानंद ने भाषा की एकता को मुद्दा बनाया और भाषा की एकता का प्रचार किया । और हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रयास किया उनका मानना था की भाषा की एकता के बिना राष्ट्र का उत्थान कदापि नही हो सकता । इसीलिए उन्होंने हिंदी का विशेष ज्ञान ना होते हुए भी अपने सबसे मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की रचना भी हिंदी में की ताकि आमजन तक यह पहुंच सके।

ऐसे अनेको कार्य दयानंद ने समाज के लिए किये और उस समाज के लिए किये जिसने उसे १७ बार जहर देकर मारने की कोशिश की और अंत में मार भी दिया। उस समाज के लिए किया जिस समाज ने उसे बार बार प्रताड़ित किया उसके ऊपर सांप और इंटे फेंकी। लेकिन फिर भी उस व्यक्ति ने कभी किसी को अपशब्द नहीं कहे। बल्कि दोगुनी ताकत से समाज से भिड़ता रहा।

स्वामी—आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक—पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5—मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है—सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।